राजयोग शिविर प्रवचन-माला

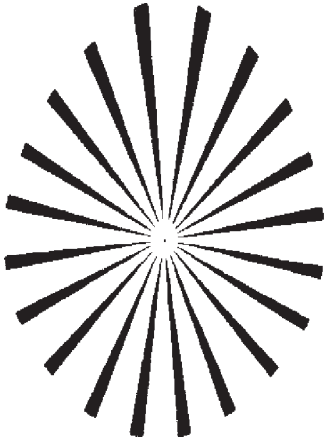

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
आबू पर्वत (राजस्थान)

अमृत सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	भूमिका	3
2.	राजयोग का लक्ष्य, नियम तथा प्राप्ति	5
3.	राजयोग के लिए आत्मा का परिचय	12
4.	राजयोग के लिए परमात्मा का परिचय	22
5.	राजयोग की विधि और आधार	32
6.	राजयोग द्वारा विकारों पर विजय	39
7.	राजयोग द्वारा अष्ट शक्तियों की प्राप्ति तथा दिव्य गुणों की धारणा	50

प्रकाशक :

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय

पाण्डव भवन, आबू पर्वत - 307501

(राजस्थान)

मुद्रक :

ज्ञानामृत भवन, शान्तिवन, आबू रोड - 307026

(राजस्थान)

फोन नं. - 22678, 23339

भूमिका

''योग'' शब्द ही – मनुष्य को अलौकिकता की ओर प्रेरित करता है। आज विश्व में योग विद्या के अभाव के कारण ही बेचैनी, परेशानी व तनाव का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। योग अत्यन्त प्राचीन प्रणाली है। भारत के प्राचीन योग की ख्याति समस्त विश्व तक पहुँची हुई है। इसलिए विश्व के अनेक प्राणियों में योगाभ्यास सीखने की आकांक्षा है।

योग की प्रख्याति के कारण समयोपरान्त इसके विविध स्वरूप सामने आये। यद्यपि योग अभ्यास की विधि एक ही है, परन्तु आत्मा और परमात्मा की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं के कारण मनुष्यों ने अनेक प्रकार के योगों का प्रतिपादन किया। धीरे-धीरे योग अभ्यास मनुष्य के लिए कठिन होता गया और योग का स्थान हठयोग व योग आसनों ने ले लिया तथा आजकल मनुष्य योग को केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ही हितकर मानने लगा। यह सत्य उससे विस्मृत हो गया कि योग पूर्णतया आध्यात्मिक विद्या है।

योग विद्या लोप होने के साथ-साथ ही संसार से सत्य धर्म भी लोप होता गया और धर्म की ग्लानि की स्थिति आ पहुँची। संसार से वास्तविक धर्म व अध्यात्म समाप्त हो गया और मानवता का भविष्य पूर्णतया अंधकार में नज़र आने लगा। हम सब कलियुग के अन्तिम चरण में पहुँच गये। तब योगेश्वर, ज्ञान-सागर परमात्मा ने स्वयं प्रजापिता ब्रह्मा के मुखारविन्द द्वारा सत्य व सम्पूर्ण योग सिखाया जिसे राजयोग की संज्ञा दी गई क्योंकि इससे मनुष्यात्मा पहले अपनी

कर्मेन्द्रियों का राजा बन जाती है फिर उसे स्वर्ग का सम्पूर्ण सतोप्रधान राज्य प्राप्त हो जाता है। परमात्मा द्वारा सिखाये गये उस सहज राजयोग का ही इस पुस्तिका में उल्लेख है।

परमात्मा ने अति सहज योग सिखाया। इसीलिए इस योग में मन्त्र, प्राणायाम व आसनों की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस योग का अभ्यास विश्व का हर प्राणी कर सकता है।

यह राजयोग वास्तव में मनुष्य को कर्म-कुशल बनाता है और कलियुग के इस दूषित वातावरण में सन्तुलित जीवन जीने की कला भी सिखाता है। इस राजयोग के अभ्यास से अन्तरात्मा की गुप्त शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं और उसमें अनेक गुणों, कलाओं व विशेषताओं का आविर्भाव होने लगता है। यह राजयोग मनुष्य को कुशल प्रशासन की कला भी सिखाता है और मन में बैठे विकारों के कीटाणुओं को नष्ट करने में सक्षम भी बनाता है। अगर जिज्ञासु इस राजयोग का एकाग्रता से अभ्यास करे और जीवन को अन्तर्मुखी बनाकर, बताये गये नियमों का पालन करे तो उसे जीवन में अत्यधिक परमानन्द व जीवन के सच्चे सुख की अनुभूति होगी।

अन्त में हम आशा करते हैं कि इस योग के अभ्यास से मनुष्यात्माएं अपने परमपिता से मिलन का अनुभव करेंगी और अभ्यास द्वारा इस योगाग्नि में अपने जन्म-जन्म के पापों को नष्ट करके एक स्वच्छ व निर्विकारी जीवन बनायेंगी तथा अन्त में कर्मातीत स्थिति को प्राप्त करेंगी।

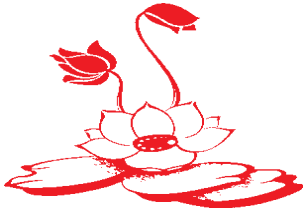

प्रवचन – १

राजयोग का लक्ष्य, नियम तथा प्राप्ति

राजयोग ही अविनाशी सुख-शान्ति का एकमात्र उपाय

आज के इस आधुनिक युग में राजयोग सीखने की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सुख-शान्ति की इच्छा रखता है और वह जानता है कि शान्ति केवल भौतिक पदार्थों से कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती। पश्चिमी देशों में भौतिकता चरम सीमा तक पहुँच चुकी है परन्तु विदेशी फिर भी भारत में ही योग सीखने आते हैं। वे जानते हैं कि योग ही एक मात्र साधन है जिससे मानसिक तनाव दूर होता है तथा तन-मन को सुख-शान्ति और शक्ति की प्राप्ति होती है। लेकिन खेद की बात यह है कि भारत के आदि, प्राचीन राजयोग के नाम पर आज अनेक प्रकार के हठयोग या केवल शारीरिक आसन ही सिखाये जाते हैं। इनसे शारीरिक स्तर पर लाभ अवश्य होता है परन्तु मन की गहरी शक्तियों को जगाने के लिए तो राजयोग से ही पूर्ण सफलता मिलती है। मन को शक्तिशाली बनाने के लिए तो राजयोग की ही आवश्यकता है। क्योंकि प्रत्येक चीज़ मन से ही आरम्भ होती है। वैसे भी 80 प्रतिशत शारीरिक रोग मानसिक तनाव के कारण ही उत्पन्न होते हैं। यहाँ जो राजयोग सिखाया जाता है इसमें कोई भी शारीरिक आसन नहीं बताये जाते हैं लेकिन हरेक बात आध्यात्मिकता तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर व्यावहारिक रूप से समझाई जाती है। राजयोग एक ऐसा सहज व विश्व प्रिय योग है जिसका अभ्यास कोई भी व्यक्ति कर सकता है–चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, रंग, उम्र, व्यवसाय, देश आदि का हो, क्योंकि राजयोग इन सब बन्धनों से पार ले जाता है।

योग का अर्थ – राजयोग को समझने के पूर्व ''योग'' शब्द का अर्थ जानना आवश्यक होगा। योग का शाब्दिक अर्थ है – जोड़,

सम्बन्ध या मिलन। प्रत्येक व्यक्ति का किसी न किसी व्यक्ति, वस्तु, वैभव से योग होता ही है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी का आपस में लौकिक सम्बन्ध भी एक योग ही तो है। जिस प्रकार अलग होने को ''वियोग'' शब्द दिया जाता है इसी प्रकार मिलन को ''योग'' शब्द दिया जाता है।

राजयोग का अर्थ – योग का आध्यात्मिक अर्थ है आत्मा का सम्बन्ध, मिलन या जोड़ परमात्मा के साथ। आत्मा और परमात्मा का मिलन सर्वश्रेष्ठ होने के कारण इसे राजयोग कहते हैं। राजयोग सभी योगों का राजा है। स्वयं परमात्मा ही अपना परिचय देकर आत्मा को अपने साथ योग लगाने की विधि बताते हैं। यह योग ''राजयोग'' इसलिए भी कहा गया है, क्योंकि इसका शिक्षक सर्वश्रेष्ठ योगेश्वर स्वयं परमात्मा ही हैं। इस योग द्वारा हमारे संस्कार उच्च अथवा ''रॉयल'' बनते हैं इसलिए भी इसे राजयोग कहा जाता है। राजयोग ही वर्तमान जीवन में कर्मों में श्रेष्ठता लाकर हमें कर्मेन्द्रियों का राजा बनाता है और भविष्य सतयुगी नई दुनिया में विश्व का महाराजा बनाता है।

राजयोग के विभिन्न नाम

(अ) ज्ञान-योग – राज शब्द में ''ज'' अक्षर के नीचे बिन्दी लगने से वह ''राज़'' बन जाता है। राज़ अर्थात् रहस्य। यह राजयोग अनेक रहस्यों को खोलता है जैसे कि – ''मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से आया हूँ? मुझे कहाँ जाना है? मैं इस संसार में क्यों आया? मैं यहाँ कब आया? परमात्मा कौन है? उनके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? मुझे उनसे क्या प्राप्ति होनी है? आदि-आदि.....।'' इसलिए इस राजयोग को ज्ञान-योग भी कहा जाता है। जब आत्मा और परमात्मा के सही स्वरूप, स्वभाव, धाम, गुणों और कर्तव्यों का ज्ञान हो तब ही राजयोग का

अभ्यास किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि राजयोग द्वारा अनेक आध्यात्मिक प्रश्नों के हल मिल जाते हैं।

(ब) सहजयोग, बुद्धियोग – राजयोग को सहजयोग या बुद्धियोग भी कह सकते हैं क्योंकि यह योग हरेक व्यक्ति कर सकता है। यह योग कभी भी और कहीं भी किया जा सकता है क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार के शारीरिक आसन की आवश्यकता नहीं है। बल्कि राजयोग में बुद्धि के द्वारा मन को नियन्त्रित कर, ईश्वरीय ज्ञान के आधार पर उसको परमात्मा में लगाया जाता है।

(स) भक्ति-योग – राजयोग में केवल परमात्मा के प्रति सच्ची लगन, प्रेम या भक्ति की परम आवश्यकता है, इसलिए इस राजयोग को भक्ति-योग भी कह सकते हैं। परमात्मा की प्रेम-पूर्ण याद ही यथार्थ भक्ति है।

(द) कर्म-योग – राजयोग ही हमें सही कर्मयोग सिखाता है। कई समझते हैं कि योग सीखने के लिए उन्हें घर-गृहस्थी का त्याग करना होगा, जिम्मेदारियों को छोड़ना होगा, गेरुए वस्त्र धारण कर जंगल में जाना होगा तब वे योगी कहला सकते हैं। लेकिन ऐसी बात नहीं है। राजयोगी सच्चा कर्मयोगी भी है। कर्मयोगी अर्थात् कर्म-योगी, कर्म करते हुए पिता परमात्मा की याद में मन लगाकर योग करना ही वास्तविक कर्मयोग है। कर्मयोगी हर कर्म परमात्मा की याद में करता है। वह अपनी जिम्मेदारियों को सम्भालते हुए, घर-गृहस्थी में रहकर स्वयं के जीवन को कमल के फूल सदृश्य रखता है। जिस प्रकार कमल का फूल कीचड़ में रहते हुए भी न्यारा रहता है, इसी प्रकार राजयोगी प्रतिकूल वातावरण में रहते हुए भी अपने आपको उससे न्यारा रखकर हर कर्म को परमात्मा की याद में करते हुए उसे श्रेष्ठ बनाता जाता है।

(क) संन्यास योग – राजयोगी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अशुद्ध अहंकार आदि जो आत्मा के महावैरी और बड़े दुश्मन हैं, पर सहज रूप से विजय प्राप्त करता है या उनका संन्यास करता है। इसलिए राजयोग को संन्यास योग भी कह सकते हैं। भौतिक रीति से राजयोगी कुछ भी संन्यास नहीं करता है लेकिन मानसिक रीति से वह सारे भौतिक विश्व का संन्यास करता है और संन्यास भी उतना सहज बन जाता है।

राजयोग एक मनोविज्ञान

आज मनुष्य परमात्मा के सामने जाकर प्रार्थना करता है कि, ''हे प्रभु! मैं तुम्हारा दास हूँ, सेवक हूँ, गुलाम हूँ, चरणों की धूल हूँ....'' आदि-आदि। लेकिन वास्तविकता यही है कि वह अपनी इन्द्रियों का गुलाम बन चुका है क्योंकि जहाँ इन्द्रियाँ मनुष्य के मन को ले जाती हैं, वहीं मन चला जाता है। इसीलिए मन को नीच, पापी, कपटी और चंचल घोड़े आदि की उपाधि दी जाती है। लेकिन परमात्मा कहते हैं कि मन एक अति प्रबल शक्ति है जिसको ईश्वर की तरफ ले जाना ही राजयोग है।

वैसे तो हर एक व्यक्ति परमात्मा को याद करता है, परन्तु उसकी सदा यही शिकायत बनी रहती है कि जब भी वह ईश्वर के ध्यान में बैठता है, तब उसका मन टिकता नहीं है। अब इसका मूल कारण क्या है? सबसे पहले ईश्वर का ध्यान करने वाला ''मैं स्वयं कौन हूँ'' – यही वह नहीं जानता है। वह यह भी नहीं जानता है कि ईश्वर का सही परिचय क्या है। इसलिए मन की शक्ति काफ़ी हद तक अनेक व्यर्थ बातों में भटकने के कारण नष्ट हो जाती है। राजयोग वह मनोविज्ञान है जिसके द्वारा आत्मा और परमात्मा का सही परिचय प्राप्त कर मन को परमात्मा में लगाया जाता है। भगवान ने कहा है – ''मन्मनाभव'' अर्थात् ''मन को मेरे में लगाओ।'' मन को मारने की बजाए मन को ईश्वर की तरफ मोड़ना ही राजयोग है। जब मन परमात्मा में लगाया

जाता है तब ही उसकी शक्ति व्यर्थ जाने के बजाए उसका संचय किया जा सकता है। राजयोग वह विधि है जिससे मन परमात्मा में लगाकर स्थायी रूप से उसके गुणों–सुख, शान्ति, आनन्द, प्रेम आदि का अनुभव किया जा सकता है।

परमात्मा के साथ आत्मा का सम्बन्ध जोड़ने के लिए किसी भी भौतिक शक्ति की आवश्यकता नहीं है। स्वयं की पहचान तथा परमात्मा की पहचान के आधार पर यह सम्बन्ध जोड़ना सहज हो सकता है।

राजयोग के लिए नियमों का पालन

संयम और नियम ही मनुष्य जीवन का मूल श्रृंगार हैं। बिना नियम के मनुष्य-जीवन पशु-जीवन से भी बदतर गिना जायेगा। ईश्वर में मन न लगने का यह भी एक कारण है। अगर मन में विकारों ने स्थान ले लिया है तो ईश्वर वहाँ स्थान कैसे ले सकता है? परमात्मा की याद उसके मन में रह सकती है जिसका मन रूपी पात्र शुद्ध हो। तो मन के शुद्धिकरण के लिए या राजयोग का श्रेष्ठ अनुभव करने के लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक हो जाता है जो निम्नलिखित है–

(अ) **ब्रह्मचर्य** – ब्रह्मचर्य अर्थात् मन, वचन, कर्म की शुद्धि। काम विकार योगी का सबसे बड़ा शत्रु है। राजयोग आत्म-स्मृति के आधार पर है जिसकी तुलना अमृत से की जाती है, जबकि काम विकार देह-अभिमान के आधार पर है जिसकी तुलना विष से की जाती है। तो ''अमृत'' और ''विष'' की भांति ''योग'' और ''भोग'' दो विरोधी बातें हैं जो साथ नहीं चल सकते हैं। अमृत के घड़े में एक बूंद भी जहर की पड़ जाने से अमृत जहर बन जाता है। एक म्यान में एक ही तलवार रह सकती है, दो नहीं। या तो जीवन राम हवाले है या काम हवाले है। जिस मन रूपी पात्र में काम विकार घूम रहा है, वहा परमात्मा स्थान कैसे ले सकता है! शुद्ध वस्तु को स्थान देने के लिए

पात्र भी इतना ही योग्य और शुद्ध होना चाहिए। उक्ति प्रसिद्ध है – ''शेरनी का दूध सोने के पात्र में ही रह सकता है।'' राजा और राजनैतिक नेता ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों के आगे मस्तक झुकाते हैं। छोटी कुमारियों की पूजा भी इसीलिए होती है क्योंकि वे पवित्र हैं। देवता भी तन-मन से पवित्र हैं, इसलिए वे पूज्य हैं।

(ब) शुद्ध अन्न – मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसका गहरा प्रभाव उसके मन की स्थिति पर पड़ता है। कहावत भी है – ''जैसा अन्न, वैसा मन।'' अत: राजयोगी के लिए भोजन की पवित्रता का नियम पालन आवश्यक है। उसका भोजन सात्विक अर्थात् शाकाहारी, सादा, ताजा और शुद्ध होता है। उसमें तमोगुणी, मांसाहारी और रजोगुणी नशीले एवं उत्तेजक पदार्थ नहीं होते हैं। भोजन बनाने वाला भी ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला हो। भोजन शुरू करने से पूर्व योगी उसे परमात्मा के प्रति अर्पित करता है और फिर प्रसाद के रूप में ग्रहण करता है जिससे उसकी मानसिक शुद्धि होती है। राजयोगी खाने के लिए नहीं जीता है, वह जीने के लिए खाता है। वह तम्बाकू, शराब आदि नशीले पदार्थों के सेवन से भी दूर रहता है।

(स) सत्संग – व्यक्ति की पहचान उसके संगी-साथियों से होती है। राजयोगी प्रतिदिन ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करता रहता है। जैसे प्रात: स्नान करने के उपरान्त मनुष्य प्रफुल्लता का अनुभव करता है, वैसे ही आत्मा को बुरे संकल्पों से बचाये रखने एवं उमंग-उत्साह में रखने के लिए प्रतिदिन ज्ञान-स्नान आवश्यक है। सत्संग का अर्थ है – सत्य का संग अर्थात् परमात्मा से मानसिक स्मृति द्वारा निरन्तर सम्पर्क बनाए रखना। पावन परमात्मा का संग करने से आत्मा पावन बन जाती है। राजयोगी अश्लील सिनेमा और उपन्यास की तरफ भी अपनी बुद्धि को नहीं ले जाता है।

(द) दिव्य गुणों की धारणा – राजयोग का अन्तिम उद्देश्य देवत्व की

प्राप्ति करना है। अत: राजयोगी अपने जीवन में सद्गुणों की भी धारणा करता है। राजयोगी स्वयं को परमात्मा की सुयोग्य सन्तान समझकर अन्तर्मुखता, हर्षितमुखता, मधुरता, सहनशीलता, प्रसन्नता, सन्तुष्टता, निर्भयता, धैर्य आदि गुणों की धारणा को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है।

राजयोग द्वारा प्राप्ति

राजयोग से अनेक उपलब्धियों की सहज प्राप्ति होती है जो और किसी योग से प्राप्त नहीं हो सकती है। यह सभी दु:खों की एकमात्र औषधि है जिससे कड़े संस्कार रूपी रोग नष्ट हो जाते हैं। राजयोग द्वारा मनुष्य अधिक क्रियाशील, कार्य-कुशल और जागरूक बन जाता है, क्योंकि उसकी एकाग्रता की शक्ति बढ़ जाती है। राजयोग मनुष्य में जीवन के प्रति मूलभूत परिवर्तन ला देता है। वह संसारी होते हुए भी विदेही होता है। वह कार्यरत होते हुए भी कर्मबन्धनों से मुक्त रहता है। वह गृहस्थ और समाज के कार्यों में सक्रिय भाग लेते हुए भी निर्लिप्त रहता है अर्थात् परिस्थितियों में तटस्थ रहकर कमल-फूल समान न्यारा और प्यारा जीवन व्यतीत करता है। इसी कारण वह समाज का भी एक लाभदायक अंग बन जाता है। संक्षेप में राजयोग उसको वह सब कुछ प्रदान करता है जो जीवन में प्राप्त करने योग्य है और वह अनुभव करता जाता है कि वह सब कुछ पा रहा है। यही जीवन की पूर्णता है।

अभ्यास

अब हम कुछ समय के लिए परमात्म-याद – अखण्ड शान्ति की स्थिति में अपने-अपने ढंग से बैठेंगे और प्रभु पिता के समक्ष राजयोग के अभ्यास निमित्त नियम पालन का श्रेष्ठ संकल्प रखेंगे ताकि वह मददगार बनकर हमें श्रेष्ठ प्राप्ति का अधिकारी बनाये।

प्रवचन – २

राजयोग के लिए आत्मा का परिचय

राजयोग की साधना करने वाला ''मैं साधक कौन हूँ?'' – इसका परिचय प्राप्त करना राजयोगी के लिए परम आवश्यक है। ''आप कौन हैं?'' – यह प्रश्न जितना ही सरल है उतना ही गहन है। गीता के भगवान ने अर्जुन को कहा है – ''हे अर्जुन, तुम स्व की स्थिति में रहो तो तुम्हारा कल्याण होगा।'' सुकरात जैसे महान् विचारक ने भी कहा है – ''अपने-आपको पहचानो।'' क्या मनुष्य अपने-आपको नहीं जानता है? अगर जानता होता तो यह प्रश्न सदियों से नहीं चला आता।

''आप कौन हैं?'' प्रश्न पूछने पर प्रत्येक व्यक्ति अपना शारीरिक परिचय देगा। वह उत्तर में अपना नाम, लिंग, गुण, व्यवसाय बतलाता है तो यह निश्चित है कि किसी भी व्यवसाय को प्रारम्भ करने से पूर्व उस व्यक्ति का अस्तित्व होता है और व्यवसाय को छोड़ देने के बाद भी उसका अस्तित्व बना रहता है। तो केवल व्यवसाय वर्णन करना पूर्ण परिचय नहीं हुआ। इसी प्रकार सभी शारीरिक परिचय विनाशी हैं क्योंकि वे विनाशी देह के साथ सम्बन्धित हैं। परन्तु जब यह कहा जाता है कि ''मैं परमात्मा के घर से आया हूँ और मुझे परमात्मा के घर जाना है'' तो यह कहने वाला ''मैं'' कौन हूँ? शरीर न परमात्मा के घर से आया है, न परमात्मा के घर जायेगा। शरीर का पिता होते हुए भी शरीर के अन्दर वह कौन-सी सत्ता है जो परमात्मा को अपना पिता कहती है?

जब हम कहते हैं कि ''हमें शान्ति चाहिए'', तो शान्ति की इच्छा रखने वाला मैं कौन हूँ? अगर केवल शरीर को शान्ति चाहिए तो किसी की मृत्यु के बाद जब शरीर शाँत हो जाता है तब फिर आत्मा की शान्ति की कामना नहीं की जानी चाहिए। किसी की मृत्यु हो जाने पर अगर कोई

रोता है तो उसे इसलिए रोका जाता है कि कहीं रोने से आत्मा अशान्त न हो जाए। परमात्मा से प्रार्थना में भी यही कहते हैं कि – ''हे प्रभु! इनकी आत्मा को शान्ति देना।'' मृतक शरीर के आगे दीपक जगाकर रखते हैं ताकि आत्मा को सही दिशा प्राप्त हो।

इससे स्पष्ट है कि ''मैं'' कहने वाली आत्मा है, न कि शरीर। मैं आत्मा साधक हूँ, और शरीर मेरा एक साधन है। शरीर और आत्मा के अन्तर का मूल भेद ''मैं'' और ''मेरा'' – इन दो सर्वनामों के प्रयोग से स्पष्ट किया जा सकता है। तो ''आप कौन हैं?'' का सही उत्तर यही है कि ''मैं आत्मा हूँ और यह मेरा शरीर है।'' ''मैं'' शब्द आत्मा की ओर इंगित करता है और ''मेरा'' शब्द आत्मा के साधन शरीर की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों के लिए भी ''मेरा'' शब्द का प्रयोग किया जाता है, न कि ''मैं'' शब्द। जैसे कि मेरा मुख, मेरे हाथ, मेरी ऑखें आदि, समूचे शरीर के लिए – मेरा शरीर।

आत्मा तथा शरीर का सम्बन्ध ड्राईवर और मोटर के समान है। जैसे मोटर में बैठकर ड्राईवर उसे चलाता है और अलग अस्तित्व रखता है, वैसे आत्मा भी शरीर में रहकर उसका संचालन करती है और शरीर से अलग अस्तित्व रखती है। जब आत्मा और शरीर का सम्बन्ध हो तब ही आत्मा जीव-आत्मा कहलाती है, तब ही ''मनुष्य'' शब्द कहने में आता है। आत्मा ही देह की इन्द्रियों द्वारा कर्म करती है और उन्हीं कर्मों का फल सुख या दु:ख रूप में देह की इन्द्रियों द्वारा ही भोगती है। इसलिए तो कहावत है कि ''आत्मा अपना ही मित्र है और अपना ही शत्रु है।'' आत्मा ही जीवात्मा के रूप में कर्मों के लेप-विक्षेप में आती है तब ही ''महात्मा'', ''पुण्यात्मा'', की संज्ञा का प्रयोग आत्मा के लिए होता है, न कि शरीर के लिए। शरीर का महत्व वा मूल्य तब तक है जब तक उसमें आत्मा का निवास है। जिस प्रकार बीज का महत्व ही तब है जब उसको धरती, जल, वायु या तेज दिया जाए, इसी प्रकार आत्मा का भी महत्व तभी है अथवा

वह कर्म तब कर सकती है जब उसे शरीर प्राप्त है। तो आत्मा और शरीर इस संसार रूपी कर्मक्षेत्र में एक-दूसरे के लिए परम आवश्यक हैं लेकिन अनुभव करने वाली आत्मा है और शरीर उसका साधन या माध्यम है।

आत्मा क्या है?

आत्मा एक अजर, अमर, अविनाशी सत्ता है। वह सत्य है, चैतन्य है जो तलवार से काटी नहीं जा सकती, पानी के स्पर्श से गीली नहीं हो सकती, हवा के स्पर्श से सूख नहीं सकती, अग्नि में जल नहीं सकती अर्थात् प्रकृति के स्पर्श से उसका कोई भी बाह्य परिवर्तन नहीं हो सकता। लेकिन आत्मा का स्वरूप क्या है? आत्मा, जो इन चर्म-चक्षुओं से दिखने वाली वस्तु नहीं, का परिचय यह अल्पज्ञ आत्मा स्वयं नहीं दे सकती। जिस प्रकार बच्चे का परिचय उसका पिता ही देता है, उसी प्रकार आत्मा का परिचय भी सर्वज्ञ परमपिता परमात्मा ही दे सकते हैं। परमपिता परमात्मा ने प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा हमें आत्मा का जो परिचय दिया है वह यहाँ दिया गया है।

आत्मा का स्वरूप

आत्मा एक अति सूक्ष्म, दिव्य, चैतन्य, ज्योति-बिन्दु है। आत्मा की ही तीन मुख्य शक्तियाँ हैं – मन, बुद्धि और संस्कार जो उसकी चैतन्यता का आधार है।

मन – यह आत्मा की ही विचार-शक्ति का नाम है। मन रूपी शक्ति के द्वारा ही आत्मा कल्पना करती अथवा सोचती और विचार करती है। विचार-प्रक्रिया ही समस्त इच्छाओं, लालसाओं तथा अनुभूतियों का आधार है। मन की गति के लिए कहावत है कि यह प्रकाश और आवाज की गति से भी तीव्र है। मन एक क्षण से भी कम समय में कितनी ही दूरी पर भी पहुँच सकता है। सूक्ष्म शक्ति होने के कारण यह समय तथा स्थान की सीमाओं के बन्धन से पार है। मन और हृदय में अन्तर है क्योंकि

हृदय शरीर का भौतिक अंग है जो रक्त संचरण को बनाये रखने का कार्य करता है लेकिन मन तो आत्मा की शक्ति है। मन के अन्दर अनेक प्रकार के विरोधी संकल्प भी चलते हैं जिनका निर्णय बुद्धि देती है।

बुद्धि – यह आत्मा की तर्क और परखने की शक्ति का नाम है। बुद्धि का कार्य है – पहचानना, समझना, स्मृण करना, तर्क करना, विश्लेषण करना एवं निर्णय लेना। बुद्धि और मस्तिष्क में भी अन्तर है क्योंकि मस्तिष्क शरीर के नियन्त्रण कक्ष के रूप में है लेकिन बुद्धि आत्मा की निर्णायक शक्ति है।

संस्कार – यह आत्मा के किये हुए कर्मों का प्रभाव है जो आत्मा अपने साथ अगले जन्म के लिए ले जाती है। इनके आधार पर ही फिर मन में संकल्प उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार यह चक्र चलता ही रहता है। संस्कार ही धारणाओं, अभिरुचियों, संवेगों, भावनाओं, दृष्टिकोणों, स्वभावों, व्यक्तिगत विशेषताओं तथा आदतों का वह समूह है जिस पर आत्मा के विचार आधारित होते हैं। मनुष्य का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसके संस्कारों का ही प्रतिबिम्ब होता है।

शरीर में आत्मा का स्थान

आत्मा प्रकाश और शक्ति से युक्त एक अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति-बिन्दु है जो मस्तक में ''भकृटि'' के स्थान पर निवास करती है। इसी स्थान के लिए कहावत है – ''भृकुटि के बीच चमकता है इक अजब सितारा।'' विज्ञान के अनुसार भी हल्की वस्तु सदैव ऊपर रहती है। इसी तथ्य के प्रतीक-स्वरूप मस्तक पर इस विशेष स्थान पर लाल बिन्दी लगाने की आम प्रथा है। योगी इस स्थान को आज्ञा-चक्र कहते हैं। स्व-अनुभूति की निशानी ''तीसरा-नेत्र'' भी इसी स्थान पर दिखाया जाता है। जिसे दसवाँ द्वार भी कहते हैं। कई लोग समझते हैं कि आत्मा हृदय में निवास करती है। लेकिन जैसे बताया गया है – हृदय तो केवल रक्त

संचरण का केन्द्र है, जबकि आत्मा मस्तिष्क के द्वारा पूरे शरीर का नियन्त्रण करती है। आप देखेंगे कि शरीर की महत्वपूर्ण इन्द्रियाँ जिनके द्वारा आत्मा कार्य एवं अनुभव करती है, जैसे – दिमाग, आँखें, नाक, कान और मुख सभी चेहरे पर आत्मा के निवास स्थान के आसपास ही हैं।

भृकुटी आत्मा का शरीर में अस्थायी स्थान है जो केवल एक जन्म के लिए ही रहता है। आत्मा और शरीर का सम्बन्ध एक अभिनेता और उसके वस्त्र के समान है। जिस प्रकार एक अभिनेता अपने अभिनय अनुसार वस्त्र बदलता है, इसी प्रकार आत्मा रूपी अभिनेता इस सृष्टि रूपी रंगमंच पर अपने कर्मों के अनुसार एक देह रूपी वस्त्र छोड़कर दूसरा धारण करती है। इसी देह छोड़ने और लेने की प्रक्रिया को ही जन्म-मरण कहा जाता है, वर्ना आत्मा का न जन्म होता है, न मरण। जिस प्रकार रंगमंच अभिनेता का घर नहीं होता है लेकिन वह अभिनय के लिए अपने घर से आता है, इसी प्रकार यह सृष्टि रूपी रंगमंच आत्मा का घर नहीं है। आत्मा के लिए कहावत है कि वह एक मुसाफिर के समान भगवान के घर से इस सृष्टि रूपी मुसाफिरखाने में अकेली आई है और अकेली ही उसे वापस लौटना है। दुःख की घड़ी में आत्मा ही अपने असली धाम को याद करती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि – ''हे प्रभु! मुझे अपने पास बुला लो।'' तो अवश्य इस अनादि-अविनाशी आत्मा का स्थायी स्थान कहीं और है। अपने सच्चे घर को याद करते समय आत्मा ऊपर आकाश की ओर देखती है। अब परमात्मा ने दिव्य-दृष्टि के द्वारा हमें आत्मा के असली निवास स्थान का भी परिचय दिया है। आत्मा का मूल निवास स्थान सूर्य, चाँद, तारामण्डल और ५ तत्वों की स्थूल दुनिया से तथा सूक्ष्म वतन (जहाँ सूक्ष्म देवता ब्रह्मा, विष्णु, शंकर निवास करते हैं) से भी पार परमधाम है। इसी धाम से आत्मायें इस साकार सृष्टि पर आती हैं। इस धाम के कई नाम हैं जैसे कि –

(अ) **परमधाम** – क्योंकि वह सबसे श्रेष्ठ धाम है।

(ब) **मुक्तिधाम** – क्योंकि वहाँ सब आत्मायें मुक्ति की अवस्था में अर्थात् जन्म-मरण, सुख-दु:ख से न्यारी स्थिति में निवास करती हैं।

(स) **निर्वाणधाम** – क्योंकि यहाँ आत्मायें वाणी से पार स्थिति में हैं।

(द) **शान्तिधाम** – क्योंकि यहाँ सर्वत्र शान्ति-ही-शान्ति है। प्रकृति का कोई तत्व ही नहीं जो आवाज़ हो।

(क) **मूलवतन** – क्योंकि यह आत्माओं का असली घर है।

(ख) **निराकारी दुनिया** – क्योंकि यहा आत्मायें अपने निराकारी ज्योति बिन्दु स्वरूप में निवास करती हैं।

(ग) **ब्रह्मलोक** – क्योंकि यह ५ तत्वों से पार सुनहरे लाल रंग का छठा अखण्ड ज्योति महतत्व है जिसे ब्रह्म महतत्व कहते हैं।

(घ) **परलोक** – जो सब लोकों से दूर है। परमधाम में कोई स्थूल पदार्थ नहीं है। इसलिए वहाँ किसी भी प्रकार की क्रिया नहीं होती है। वहाँ आत्मायें सुषुप्त अवस्था में निवास करती हैं। क्योंकि प्रकृति न होने के कारण चेतना की भी अनुभूति नहीं होती है। आत्मायें परम शान्ति की स्थिति में निवास करती हैं। इसीलिए प्रत्येक मनुष्यात्मा मुक्ति या परम शान्ति की कामना करती है।

आत्मा का कर्तव्य

यह आम प्रश्न हरेक के मन में उठता है कि अगर आत्मा शान्तिधाम में शान्ति की स्थिति में स्थित है तो उसे इस सृष्टि पर आने की क्या आवश्यकता है ? परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि आत्मा एक अभिनेता के समान है। अभिनेता की संज्ञा उसे दी जाती है जो मंच पर आकर अभिनय करता है। आत्मा की चैतन्यता प्रकट ही तब होती है अथवा वह अनुभूति कर सकती है जब शरीर रूपी वस्त्र में इस सृष्टि रूपी रंगमंच या कर्मक्षेत्र पर उपस्थित हो। आत्मा का यह स्वाभाविक

कर्तव्य है कि वह सृष्टि रूपी रंगमंच पर शरीर रूपी वस्त्र धारण कर कर्म करती रहे। क्योंकि वह स्वयं अनादि-अविनाशी है, उसका कर्तव्य भी अनादि-अविनाशी है, साथ-साथ जिस कर्मक्षेत्र पर वह कर्म करती है वह भी अनादि और अविनाशी है, इसीलिए वह सदाकाल के लिए कर्म से छूट नहीं सकती।

आत्मा का मूल स्वभाव

मूल संस्कार – हर आत्मा अनादि स्वरूप से मूलत: ज्ञानस्वरूप, पवित्रस्वरूप, शान्तिस्वरूप, प्रेमस्वरूप, सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप, शक्ति-स्वरूप आदि-आदि है। कोई भी व्यक्ति अशान्ति, दु:ख या नफरत नहीं चाहता है क्योंकि ये आत्मा के मूल गुण या संस्कार नहीं हैं।

मूल गुण खोने का कारण – आत्मा जब परमधाम से पहली बार इस सृष्टि रूपी कर्मक्षेत्र पर उतरती है, तब वह अपने आदि स्वरूप या संस्कारों में पवित्र और सतोप्रधान होती है। लेकिन बार-बार पुनर्जन्म लेने के कारण आत्मा शरीर के प्रति आसक्त हो जाती है जिससे देह-अभिमान की उत्पत्ति होती है। देह-अभिमान के कारण ही आत्मा ५ विकारों अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के वशीभूत हो जाती है जिसके फलस्वरूप वह अपने मूल गुणों को खो देती है। यही विकार आत्मा के दु:ख और अशान्ति के मूल कारण हैं।

आज हर आत्मा अपना स्वरूप, अपने स्व-लक्षण, अपना स्व-देश, अपना स्व-धर्म तथा अपने परमपिता – इन सबको भूल गई है और विषय-विकारों की दासी बन चुकी है। ऐसी स्थिति को देखते हुए परमपिता परमात्मा हम आत्माओं को फिर से राजयोग के द्वारा आत्मा के अनादि और आदि-स्वरूप की पहचान कराकर स्व-अनुभूति करा रहे हैं।

शान्ति हर आत्मा का स्वधर्म या निजी गुण है, अत: उसकी बाहर खोज करना निरर्थक है। बाह्य संसार में शान्ति की खोज करने वालों की

तुलना उस राजकुमारी से की जाती है जो नौलखा हार गले में पहन रखने के बावजूद उसे सारे महल में ढूँढ़ती रही या उस मृग की तरह जो कस्तूरी की मोहक सुगन्ध के पीछे दौड़ता फिरता है, उसे ज्ञान नहीं होता कि सुगन्ध उसकी अपनी नाभि से आ रही है। मन की शान्ति आत्मा का अपना मूल गुण है। जब आत्म-स्थिति का अभ्यास पक्का हो जाता है तो वह स्वयं अन्दर से ही प्रकट होती है। सत्यता तो यही है कि गुण कभी नष्ट नहीं होते लेकिन देहाभिमान या अज्ञान के पर्दे के कारण ढक जाते हैं और पर्दा हटने पर ये फिर से अनुभव होते हैं।

''मैं आत्मा हूँ'' – इस शाश्वत सत्य को पहचानने से आत्मा अन्य को भी आत्मा रूप में, भाई-भाई की दृष्टि से देखती है। यही भाई-भाई की दृष्टि आत्मा में पवित्रता की अनुभूति कराती है और पवित्रता ही सुख-शान्ति की जननी है। पवित्रता के आधार पर सर्व आत्माओं के प्रति आत्मिक प्यार और स्वयं में आनन्द की अनुभूति होती है। आत्मा जितना इन गुणों को धारण करती जाती है उतना शक्ति का अनुभव कर विकारों पर सहज विजय प्राप्त कर सकती है।

राजयोग की प्रथम अवस्था – आत्म-स्थिति

आत्मा का परिचय प्राप्त करने के बाद आत्म-स्मृति के आधार पर आत्म-स्थिति, जो राजयोग की प्रथम अवस्था है, का अनुभव करना अत्यन्त सहज होता है। राजयोग में हठयोग के आसन करने की आवश्यकता नहीं, मन को पद्म समान न्यारा रखना ही राजयोग का पद्मासन है। बाह्य आसन सुखासन का रूप रखिये जिससे बैठने में कोई कष्ट न हो।

राजयोग में आँखें बन्द करने की भी आवश्यकता नहीं है। इसके कई कारण हैं। –

(अ) यह राजयोग हमें कर्मयोग की प्रेरणा देता है जो आँखें बन्द करके नहीं किया जा सकता। राजयोगी चलते-फिरते, उठते-बैठते, हर

समय अपनी आत्मिक स्थिति बनाये रखता है।

(ब) बन्द ऑखें निद्रा, सुस्ती या थकावट का संकेत देती हैं। अत: ऑखें बन्द करने की अपेक्षा अपने मन को बाह्य विचारों से बन्द करके एकाग्रता से मनन करना – यह अधिक लाभदायक है। यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि जब कोई व्यक्ति गहन विचारों में डूबा हुआ होता है तो यद्यपि उसके नेत्र खुले रहते हैं तथापि उसे अपने आस-पास का कुछ भी आभास नहीं रहता।

(स) ऑखें खुली रख कर योग करने से दृष्टि पवित्र बन जाती है क्योंकि उस समय हम अन्य को भी आत्मा रूप में देखते हैं। किसी भी व्यक्ति को देखते समय भृकुटी में आत्मा देखने से दृष्टि की चंचलता समाप्त हो जाती है।

राजयोग के लिए श्रेष्ठ वातावरण

राजयोग अभ्यास के लिए प्रात: ब्राह्ममुहूर्त ४ से ५ बजे का समय सर्वश्रेष्ठ है। इस समय चारों ओर का वातावरण अत्यन्त शान्त होता है और मन ताजा होता है। अपने घर के किसी स्वच्छ और शान्त स्थान को योग अभ्यास के लिए निश्चित कर लें। कमरे में लाल रंग के बल्ब का प्रकाश किया जा सकता है, यह परमधाम के सुनहरे लाल ब्रह्म महतत्व की स्मृति में सहायक रहेगा। अगरबत्ती भी जला लें तो अच्छा है। यदि मन अस्थिर हो तो एकाग्रता के लिए कोई वाद्य-संगीत या प्रभु-प्रेम के गीत का रिकार्ड बजा लें, इससे योगानुकूल मनोदशा बनने में सरलता रहेगी। यह बाह्य साधन ज़रूरी नहीं है परन्तु कई बार साधना में मदद देते हैं।

स्व-स्वरूप में स्थित होने की विधि

पहले स्वयं को देह से न्यारा कर एक ज्योतिर्बिन्दु आत्मा निश्चय

कीजिए। फिर मन और बुद्धि को देह की दुनिया से न्यारा कर आत्माओं की दुनिया में ले जाइये और वहाँ स्वयं को अपने असली स्वरूप में स्थित कीजिए। निम्नलिखित मनन-चिन्तन के आधार से आत्म-स्थिति बनाइये।

मैं एक आत्मा हूँ.....इस शरीर को चलाने वाली, आँखों द्वारा देखने वाली, मुख द्वारा बोलने वाली, कानों द्वारा सुनने वाली मैं एक चैतन्य शक्ति हूँ.....मैं आत्मा अति-सूक्ष्म ज्योतिर्बिन्दु हूँ.....चमकता हुआ दिव्य सितारा हूँ.....। मैं अविनाशी हूँ....सत्य हूँ.....आनन्दस्व-रूप हूँ.....। यह शरीर मेरा रथ है.....इस पर सवार मैं आत्मा रथी हूँ.....यह शरीर मेरा वस्त्र है.....इसको धारण कर मैं आत्मा एक्टर समान इस सृष्टि पर पार्ट बजा रही हूँ...। मैं आत्मा भृकुटी में विराजमान होकर शरीर की कर्मइन्द्रियों द्वारा कर्म करती हूँ और कर्मइन्द्रियों द्वारा ही सुख या दु:ख का अनुभव करती हूँ.....।

मैं आत्मा वास्तव में इस आवाज़ की दुनिया से दूर.....सूर्य, चाँद, तारागण से पार....तत्वों की दुनिया से भी पार....अखण्ड ज्योति ब्रह्म महतत्व, शान्तिधाम, परमधाम की निवासी हूँ....वहाँ से इस सृष्टि मंच पर आकर मैंने जन्म-जन्मान्तर यहाँ अनेक नाम रूप वाले शरीर लेकर पार्ट बजाया....। अब मुझे वापिस उस ज्योति के देश में लौटना है....। मैं आत्मा अब बुद्धिबल के द्वारा अपने घर जा रही हूँ...। अहा! ५ तत्वों से पार इस घर में सर्वत्र शान्ति है...पवित्रता है....प्रकाश है....निस्संकल्पता है...असीम शान्ति है....। ओहो! ये कैसी न्यारी और प्यारी अवस्था है....यहाँ मैं आत्मा निज स्वरूप में स्थित हूँ.....शान्ति-स्वरूप हूँ....शक्तिस्वरूप हूँ...। अब मैं आत्मा अपनी निजी शान्त स्थिति का अनुभव कर रही हूँ....।

प्रवचन – ३

राजयोग के लिए परमात्मा का परिचय

राजयोग का सही अर्थ है आत्मा का परमपिता परमात्मा के साथ सम्बन्ध अथवा मिलन। इस मिलन द्वारा आत्मा को परमात्मा से सर्व प्रकार के गुणों और शक्तियों की प्राप्ति होती है। आत्मा के विषय में जानकारी प्राप्त करने के बाद राजयोगी को यह जानना अति आवश्यक होगा कि परमात्मा कौन है? जिसके साथ योगी आत्मा को योग लगाना है या सम्बन्ध जोड़ना है।

आज प्रत्येक व्यक्ति की यह शिकायत है कि ईश्वर का ध्यान करते समय उसका मन भटकता रहता है या एकाग्र नहीं हो पाता है। इस तरह की शिकायत मनुष्य के साथ योग लगाने की बात में कभी नहीं होती है। कोई पत्नी यह शिकायत नहीं करेगी कि जब वह अपने पति को याद करती है तब उसका मन भटकता रहता है। कोई भी बच्चा यह कभी नहीं कहेगा कि वह अपने पिता में अपना मन एकाग्र नहीं कर सकता है। तब फिर यह शिकायत परमात्मा के लिए क्यों है? एक तरफ परमात्मा को माता-पिता कहकर याद किया जाता है, उनके साथ सर्व सम्बन्धों का भी वर्णन किया जाता है –

त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणम् त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम देव-देव।।

यह परमात्मा की ही तो महिमा में गाया जाता है। लेकिन दूसरी तरफ यह भी शिकायत बनी रहती है कि ईश्वर में मन नहीं लगता है। इसका मूल कारण यही है कि परमात्मा के साथ सम्बन्ध की पूरी अनुभूति नहीं। एक पत्नी को अपने पति का पूरा परिचय या बच्चे को अपने पिता की पूरी पहचान है। लेकिन परमात्मा के विषय में मनुष्य बिल्कुल ही अनभिज्ञ हैं।

आज परमात्मा के सम्बन्ध में अनेक मन्तव्य और विश्वास प्रचलित हैं

जो प्राय: एक-दो के विरोधी ही हैं। इसी कारण मनुष्य समझ नहीं पाता है कि आखिर परमात्मा कौन है ? यही कारण है कि कई उसके अस्तित्व को ही स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है।

कोई परमात्मा को नाम रूप से न्यारा मानते हैं तो कोई इस अभिप्राय के हैं कि सभी ईश्वर के ही नाम-रूप हैं। कोई श्रीकृष्ण, श्रीराम, महात्मा बुद्ध, ईसा मसीह को परमात्मा का अवतरण मानते हैं तो कोई यह स्वीकार ही नहीं करना चाहते हैं कि परमात्मा का कभी अवतार भी होता है। कोई आत्मा को ही परमात्मा मानते हैं तो कोई आत्मा को परमात्मा का अंश मानते हैं। कोई तो जगत को मिथ्या और ब्रह्म को सत्य मानते हैं तो कोई जगत के अन्दर ही प्रकृति को ही ईश्वर का स्वरूप समझते हैं। कोई स्वयं को ईश्वर के नीच या दास सिद्ध करते हैं तो कोई स्वयं को शिवोहम् या भगवान कहलाकर खुद की पूजा करवाते हैं। कोई परमात्मा को हृदय में मानते हैं तो कोई कण-कण में व्यापक समझते हैं और कोई उसका स्थान सातवां आसमान बताते हैं। अब आखिर परमात्मा कौन है, कैसा है और कहाँ है ?

उपरोक्त अनेक मन्तव्यों का कारण है कि परमात्मा कोई स्थूल वस्तु नहीं है जिसे चर्म-चक्षुओं से देखा जा सके या स्थूल इन्द्रियों से अनुभव किया जा सके। चैतन्य परमात्मा का वास्तविक स्वरूप तो बुद्धि के द्वारा ही जाना अथवा अनुभव किया जा सकता है। प्राचीन ऋषि-मुनि परमात्मा की हर प्रकार से खोज करने के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि ईश्वर को पहचानना मनुष्य के वश की बात नहीं है। ईश्वर के बारे में ने:ति-ने:ति कहकर छोड़ दिया।

परमात्मा की सत्य पहचान

अब यह तो सार्वभौमिक रूप से अवश्य स्वीकार किया जाता है कि परमात्मा एक है और वह सत्य है। इससे स्पष्ट है कि परमात्मा का परिचय

भी केवल एक ही हो सकता है।

ईश्वर की सत्य पहचान क्या होगी ? जिस प्रकार किसी डॉक्टर की पहचान उसके ज्ञान, अनुभव, गुणों तथा कर्तव्यों के आधार पर ही की जा सकती है, उसी प्रकार परमात्मा का सही स्वरूप पाँच बातों के आधार पर पहचाना जा सकता है–

(अ) परमात्मा उसे कहा जायेगा जो सर्वमान्य हो, यानी जिसे सभी धर्मों की आत्मायें स्वीकार करें क्योंकि वह सर्व धर्मों की आत्माओं के परमपिता हैं। उसे अलग-अलग भाषाओं और धर्मों में अलग-अलग नामों से याद किया जाता है, जैसे कि परमेश्वर, ईश्वर, ओंकार, अल्लाह, खुदा, गॉड, नूर इत्यादि परन्तु वह एक ही है।

(ब) परमात्मा उसे कहेंगे जो सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम या परम हो यानी उसके ऊपर कोई हस्ती नहीं हो। परमात्मा का कोई माता-पिता, शिक्षक, गुरु या रक्षक नहीं है, बल्कि वे ही सर्व आत्माओं के परमपिता, परम शिक्षक, परम सत् गुरु और परम रक्षक हैं। इसलिए उसकी महिमा में ही गाया गया है – ''ऊंचा तेरा नाम, ऊंचा तेरा धाम, ऊंचा तेरा हर काम, ऊंचे से ऊंचा भगवान।'' तो जिसका नाम, धाम, गुण, कर्तव्य सबसे ऊंचा है वही परमात्मा है।

(स) परमात्मा उसे कहेंगे जो सबसे न्यारा हो। परमात्माजन्म-मरण, कर्म-फल, पाप-पुण्य, दु:ख-सुख सबसे न्यारा है। परमात्मा इस प्रकृति की परिवर्तन-क्रिया अर्थात् सतो, रजो, तमो से भी न्यारा है। वह सर्व प्राकृतिक बन्धनों से मुक्त है। इसलिए वह सर्व से न्यारा और सर्व का प्यारा माना गया है। ईश्वर से ऊंचा तो कोई नहीं है परन्तु उसके समान भी कोई नहीं है।

(द) परमात्मा उसे कहेंगे जो सर्वज्ञ हो अर्थात् वह सब कुछ जानता हो। किसी भी संदर्भ में जब कोई बात व्यक्ति की समझ में नहीं आती है तो ईश्वर को याद कर अवश्य कहेगा ''भगवान जाने या अल्लाह जाने।''

परमात्मा से कोई भी बात अनभिज्ञ नहीं है क्योंकि वह सर्वज्ञ है।

(क) परमात्मा उसे कहेंगे जो सर्व गुणों और शक्तियों का भण्डार अथवा दाता हो। परमात्मा कभी भी किसी से लेता नहीं है परन्तु सागर या सूर्य के समान अपने गुणों और शक्तियों को देता ही रहता है। उसी के लिए गाया गया है – ''देने वाला जब भी देता है, छप्पर फाड़ कर देता है।''

अब कोई भी साकार देहधारी व्यक्ति को परमात्मा नहीं कह सकते हैं क्योंकि साकार व्यक्ति कभी भी सर्वमान्य नहीं हो सकता जो सभी धर्मों की आत्माओं को स्वीकृत हो। साकार देहधारी के माता-पिता, शिक्षक, गुरु, रक्षक अवश्य होंगे, इसलिए उसे सर्वोच्च भी नहीं कह सकते हैं। साकार व्यक्ति सबसे न्यारा भी नहीं हो सकता है क्योंकि साकार के साथ जन्म-मरण, कर्म-फल, पाप-पुण्य और सुख-दुःख आदि भी संलग्न हैं। साकार सर्व का ज्ञाता तथा दाता भी नहीं बन सकता है। वह तो और ही ईश्वर से ज्ञान, सुख, शान्ति और शक्ति की भीख माँगता है। इन सभी बातों से सिद्ध होता है कि कोई भी साकारी देहधारी व्यक्ति परमात्मा नहीं हो सकता है।

अब हम परमात्मा के संदर्भ में उस सत्य ज्ञान का उल्लेख करते हैं जो स्वयं परमात्मा ने अपने साकार माध्यम प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा सुनाया है।

परमात्मा अपना परिचय स्वयं देते हैं कि मैं निराकार हूँ। बहुत से लोग ''निराकार'' शब्द का गलत अर्थ लेते हैं कि परमात्मा का कोई भी रूप नहीं है। यदि परमात्मा का कोई रूप न हो तो राजयोग बिल्कुल निरर्थक हो जाता है, क्योंकि तब परमात्मा को याद करना असम्भव हो जायेगा। हम किसे याद करें और कहाँ याद करें ? प्रत्येक वह वस्तु जिसका अस्तित्व है, उसका रूप या साकार भी अवश्य ही होता है, फिर चाहे वह रूप कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो। गुणों और विशेषताओं का कोई रूप नहीं है, पर जिस

विभूति या अस्तित्व में ये गुण या विशेषतायें हैं उसका आकार अवश्य होता है। उदाहरण के तौर पर सुगन्ध आकारहीन है, पर जिस पुष्प या पदार्थ से वह नि:सृत होती है उसका आकार अवश्य है। परमात्मा के गुण जैसे – ज्ञान, प्रेम, शान्ति, आनन्द आदि का कोई आकार नहीं है लेकिन परमात्मा, जो इन गुणों के स्त्रोत अथवा सागर हैं, आकार रहित नहीं हो सकते हैं।

परमात्मा का सत्य स्वरूप

जिस प्रकार ''निर्गुण'' शब्द ''सगुण'' शब्द की भेंट में प्रयोग किया जाता जाता है इसी प्रकार ''निराकार'' भी एक सापेक्ष शब्द है जो ''साकार'' की भेंट में प्रयोग किया जाता है। परमात्मा साकार देहधारी मनुष्य या सूक्ष्म आकारी देवताओं ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर की भेंट में निराकार हैं। ''परमात्मा'' शब्द का संधि विच्छेद करने से दो शब्द बनते हैं – परम और आत्मा। परमात्मा भी एक अति सूक्ष्म आत्मा ही है यद्यपि वह अन्य सभी आत्माओं की तुलना में अपने गुणों और कर्तव्यों में परम आत्मा है। जैसे आत्मा ज्योतिर्बिन्दु है, वैसे परमात्मा भी ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप हैं परन्तु दोनों के बीच अन्तर यह है कि परमात्मा की आत्मा जन्म-मरण, कर्म-फल, सुख-दु:ख आदि से न्यारी है, जबकि मनुष्यात्मायें जन्म-मरण के चक्कर में आने वाली हैं और अपने कर्मों के आधार पर सुख या दु:ख का अनुभव करती हैं। गणित में बिन्दु का कोई माप नहीं है, इसलिए उसे निराकार कह सकते हैं। परन्तु उसका स्वरूप अवश्य है चाहे वह कितना ही सूक्ष्म, अति सूक्ष्म क्यों न हो। वास्तव में आत्मा तथा परमात्मा के आकार में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप हैं। अन्तर केवल उनकी ज्योति, गुण और शक्ति में है।

परमात्मा की बेअन्त महिमा

आत्मायें अनेक हैं और परमात्मा एक है। आत्माओं की महिमा सीमित

है लेकिन परमात्मा की महिमा के लिए गाया गया है कि अगर सागर को स्याही बनाया जाए, पृथ्वी को कागज़ बनाया जाए, जंगलों को कलम बनाया जाए और साक्षात् सरस्वती, विद्या की देवी अपने हस्तों से ईश्वर की महिमा लिखे तो भी उसकी महिमा का अन्त नहीं हो सकता है। इतनी है अपरम्पार उस परमपिता परमात्मा की महिमा, जो रूप में ज्योतिर्बिन्दु हैं परन्तु गुणों में सिन्धु हैं, अनन्त हैं। इसलिए उनकी महिमा की तुलना सागर से की जाती है। परमात्मा ज्ञान के सागर, सुख के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, पवित्रता के सागर, सर्वशक्तिवान्, सर्व आत्माओं के कल्याणकारी, गति-सद्गति दाता हैं।

परमात्मा का शाश्वत नाम

जैसे प्रत्येक वस्तु का कोई स्थूल अथवा सूक्ष्म आकार होना ज़रूरी है वैसे हर एक वस्तु का कोई नाम भी अवश्य होता है। परमात्मा का नाम अद्भुत है। जब कोई मनुष्यात्मा शरीर धारण करती है तो शरीर का ही नामकरण होता है, आत्मा का नहीं। आत्मा के शरीर का नाम हर जन्म में बदलता रहता है। परमात्मा मनुष्यात्माओं की तरह गर्भ द्वारा जन्म नहीं लेता है। अत: परमात्मा का न तो अपना कोई शरीर है और न ही शारीरिक नाम है। परमात्मा का नाम शाश्वत है और वह उनके गुणों और दिव्य कर्तव्यों पर आधारित है। लोग उसे अपनी भाषा में विविध गुणवाचक नामों से पुकारते हैं, लेकिन परमात्मा का स्व-उद्घाटित नाम 'शिव' है। 'शिव' का अर्थ है सदा और सर्वदा कल्याणकारी। शिव अर्थात् बिन्दु। ''सत्-चित्-आनन्द स्वरूप और सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' – उसी सत्य स्वरूप, सदा सुन्दर, कल्याणकारी पिता परमात्मा की ही महिमा है। शिव पवित्रता तथा शान्ति का भी सूचक है। परमात्मा शिव को शम्भू अथवा स्वयं-भू भी कहते हैं क्योंकि उनके कोई माता-पिता या रचयिता नहीं हैं। उन्हें सदा ही शिव भोलानाथ भी कहते हैं, क्योंकि वह सदा ही जल्दी

प्रसन्न होने वाले कल्याणकारी पिता परमात्मा हैं।

हर धर्म में परमात्मा का यादगार

निराकार-परमात्मा का ज्योति-स्वरूप आकार सर्वमान्य है क्योंकि संसार में इसी का यादगार अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग नामों से पाया गया है। भारत में ज्योतिर्लिंगम् प्रतीक उसी ज्योति-स्वरूप शिव परमात्मा का यादगार चिह्न है, जिसके मन्दिर जगर-जगह पाये गये हैं। अमरनाथ, सोमनाथ, विश्वनाथ, केदारनाथ, पशुपतिनाथ, महाकालेश्वर, मुक्तेश्वर, रामेश्वर, ओंकारेश्वर, पापकटेश्वर, गोपेश्वर इत्यादि। ये सब परमात्मा शिव के दिव्य कत्तव्यों और गुणों का सूचक हैं।

भारत के १ २ प्रमुख शिव मन्दिरों को ज्योतिर्लिंगम् मठ (ज्योति के प्रतीक का आवास) कहा जाना पुन: सिद्ध करता है कि परमात्मा ज्योति स्वरूप है। यहाँ लिंग का अर्थ ''चिह्न'' से है। शिवलिंग परमात्मा ही के स्वरूप का स्मरण चिह्न है।

मुसलमान भाई भी मक्का में हज यात्रा करते समय एक काला अंगुष्ठाकार पत्थर, जिसे वे ''संग-ऐ-असवद'' या ''काबा का पत्थर'' कहते हैं; को श्रद्धा अर्पित करते हैं। यह पत्थर भारत के शिवलिंग के समान ही है। उनका भी विश्वास है कि अल्लाह एक ''रूहानी रूह'' या ''नूर'' है।

यहूदियों की मान्यता है कि मूसा को सोनाई पर्वत पर परमात्मा का साक्षात्कार ज्योति के रूप में हुआ था। वे परमात्मा को ''जिहोवा'' कहते हैं। सभी धर्म-स्थापकों ने एक निराकार की ही महिमा की है। ईसा मसीह ने कहा कि परमात्मा एक ज्योति है (गॉड इज लाइट), गुरु नानक ने उन्हें एको उंकार कहा। विभिन्न योगियों को भी यही ज्योति प्रतीत हुई। आज तक मन्दिरों में दीपक तथा गिरजाघरों में मोमबत्ती जलाने की प्रथा है क्योंकि प्रकाश की लौ परमात्मा के स्वरूप का प्रतीक है। जापान में एक पंथ है जिसके अनुयायी एक अंगुष्ठाकार पत्थर पर अपना ध्यान केन्द्रित

करते हैं। इसे वे ''चिन्कोनसेकी'' (शान्ति दाता) कहते हैं।

परमात्मा शिव सर्व आत्माओं के परमपिता हैं। वे देवताओं, धर्म-स्थापकों के पिता हैं क्योंकि वे शाश्वत, सदा सम्पन्न और अपरिवर्तनशील हैं।

परमात्मा का दिव्य धाम

निराकार परमपिता परमात्मा शिव आत्माओं में परम आत्मा होने के कारण, उनका निवास स्थान आत्माओं के निवास स्थान के समान इस भू-मण्डल के सूर्य, चांद, तारागण और पांच तत्व – आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी से पार ब्रह्मा, विष्णु, शंकर के सूक्ष्म लोक से भी पार परमधाम अथवा परलोक है। परमात्मा शिव का वहाँ निवास होने के कारण उस धाम को शिवपुरी भी कहते हैं। अखण्ड सुनहरी लाल ज्योति ब्रह्म महतत्व में परमात्मा का निवास होने के कारण परमात्मा पार ब्रह्म परमेश्वर भी कहलाये गये हैं।

कई, अखण्ड ज्योति, ब्रह्म महतत्व को ही परमात्मा समझ लेते हैं। परन्तु जैसे बताया गया है – ब्रह्म तो परमात्मा का अविनाशी दिव्य धाम है। जैसे शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं, वैसे ब्रह्म और परमात्मा शिव अलग-अलग हैं। यह बह्म जड़ महतत्व हम आत्माओं का भी धाम है और शिव चैतन्य परमात्मा हम आत्माओं के परमपिता हैं जिन्हें हम स्नेह से शिवबाबा कहते हैं।

कुछ लोगों की यह विचारधारा है कि परमात्मा सर्वव्यापी है। यह मन्तव्य भावनात्मक दृष्टिकोण से तो बड़ा सुन्दर है, क्योंकि उसके आधार पर आत्मा अनुभव करती है कि वह सदा ही परमात्मा के साथ है। यह भावना तब जागृत हुई जब ईश्वर में अति आस्था और प्रेम होने के कारण जिस प्रेमिका को अपना प्रियतम सब जगह दिखाई देता है, उसी प्रकार भक्त-जन भी उनहें जहाँ-तहाँ साक्षात्कार में देखते थे। दूसरा कारण यह भी

था कि महान पुरुषों ने पाप कर्मों से बचाने के लिए साधारण जन में यह भय की भावना बैठायी कि परमात्मा हर एक के कर्मों को देख रहा है, क्योंकि वह सब जगह है। इसलिए पाप कर्म नहीं करना चाहिए। परन्तु आज ईश्वर के प्रति भावना और डर तो समाप्त हो गया है। केवल यह एक खोखला सिद्धान्त रह गया है कि परमात्मा कण-कण में व्यापक है। जैसे कोई पिता अपने पुत्र में व्याप्त नहीं होता है, इसी तरह परमात्मा जो सर्व आत्माओं के परमपिता हैं उनमें विद्यमान नहीं हो सकता है। अगर होता तो विश्व बन्धुत्व वा ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की बात सार्थक न होती। परमात्मा भी चैतन्य परम आत्मा है जो आत्माओं के धाम में ही निवास करते हैं।

परमात्मा को परमधाम निवासी समझने से आत्मा सहज ही अपनी बुद्धि को उस धाम में अपने परमपिता परमात्मा शिव बाबा के पास ले जा सकती है और उनसे अनन्त प्राप्ति का अनुभव कर सकती है।

परमात्मा के दिव्य कर्तव्य

परमात्मा का वायदा है कि –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्।।

जब-जब संसार में अति धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब परमात्मा परमधाम से अवतरित होकर अधर्म का विनाश कर सतधर्म की स्थापना करते हैं। परमात्मा अवतरित होकर वह कर्तव्य करते हैं जो कोई भी मनुष्यात्मा नहीं कर सकती है। परमात्मा, आत्मायें तथा प्रकृति – तीनों ही अपने अस्तित्व में अनादि और अविनाशी हैं। परमात्मा शिव को आत्माओं का परमपिता इसलिए नहीं कहा जाता है कि वे आत्माओं को रचते हैं परन्तु जब सभी आत्मायें तमोप्रधान, पतित, विकारी, निर्बल बन जाती हैं, तब परमात्मा शिव ही आकर सर्व आत्माओं को पावन, सतोप्रधान बनाकर उन्हें वापस परमधाम में ले जाते हैं। परमात्मा सर्व आत्माओं के मुक्ति तथा

जीवनमुक्ति-दाता होने के कारण परमपिता कहलाये जाते हैं। परमात्मा स्वयं अकर्ता है, लेकिन सूक्ष्म देवताओं ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर द्वारा क्रमश: स्थापना, पालना तथा विनाश का कर्तव्य करवाते हैं, इसलिए उन्हें त्रिमूर्ति कहा गया है।

संक्षेप में परमात्मा का परिचय इस प्रकार है :– नाम–कल्याणकारी शिव, स्वरूप – ज्योतिर्बिन्दु, धाम –परमधाम, गुण–ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, प्रेम के सागर, पतित पावन, कर्तव्य–अधर्म का विनाश कर सत् धर्म की स्थापना। अवतरण का समय–कलियुग के अन्त व सतयुग के आदि का संधिकाल।

परमात्म-स्मृति का अभ्यास (विधि)

परमात्मा का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के बाद अब आत्मा को उनके साथ बुद्धियोग लगाना बड़ा सहज हो सकता है।

स्वयं को आत्मा निश्चय कर बुद्धि-बल द्वारा उस परमपिता परमात्मा शिव, जो रूप में ज्योतिर्बिन्दु हैं और गुणों में सिन्धु हैं, का मन में श्रेष्ठ चिन्तन कर उनको अत्यन्त स्नेह से याद करो–

विधि– मैं आत्मा परमपिता परमात्मा की सन्तान हूँ....। जैसे मैं आत्मा ज्योतिर्बिन्दु हूँ, वैसे मेरे परमिपता परमात्मा भी अति सूक्ष्म ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप हैं....रूप में बिन्दु होते हुए भी वे सर्वगुणों में सिन्धु हैं....सागर हैं....। वे सर्व आत्माओं के कल्याण करने वाले हैं, इसलिए उनका गुणवाचक नाम कल्याणकारी शिव बाबा है....। वे सदा जन्म-मरण से मुक्त हैं.....दु:ख से न्यारे हैं.....एकरस और अपरिवर्तनीय हैं। शिव बाबा ज्ञान के सागर हैं.....पवित्रता के सागर हैं, शक्ति के सागर हैं.....सुख के सागर हैं.....सर्वशक्तिवान् हैं.....। अब मैं आत्मा उनके समीप हूँ.....। शिव बाबा प्रेम के सागर हैं.....आनन्द के सागर हैं.....। शान्तिधाम, ज्योति के देश में मैं अपने परमपिता परमात्मा शिव बाबा के संग मे सर्वगुणों का अनुभव कर रही हूँ।

प्रवचन – ४

राजयोग का आधार और विधि

योग का अति सरल अर्थ है – किसी की याद। किसी की याद आना या किसी को याद करना – यह मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। मन जिस विषय पर सोचता है, उसी के साथ उस आत्मा का योग है फिर वह चाहे व्यक्ति, वस्तु, वैभव या परिस्थिति हो या परमात्मा ही क्यों न हो। अब मन कहाँ-कहाँ जा सकता है, मन का कहीं भी जाने का आधार क्या है? संसार में करोड़ों मनुष्य हैं लेकिन मन सभी के विषय में नहीं सोचता है। मन उसी के बारे में सोचेगा, जिसका उसे परिचय हो। तो पहला आधार है परिचय। फिर जिसके साथ सम्बन्ध होता है वहाँ मन सहज जा सकता है। तो दूसरा आधार है सम्बन्ध। तीसरा आधार है स्नेह। जिससे स्नेह हाता है उसके पास मन अपने-आप चला जाता है। चौथा आधार है प्राप्ति। जहाँ से किसी को प्राप्ति होगी वहाँ से वह अपना मन हटाना ही नहीं चाहेगा। तो किसी की भी याद के लिए मुख्य चार आधार हैं – परिचय, सम्बन्ध, स्नेह और प्राप्ति। इन्हीं चार आधारों के कारण मनुष्य की याद सदा बदलती ही रहती है या परिवर्तनशील होती है। एक बालक का योग अपनी माता के साथ है क्योंकि उसको केवल माँ का परिचय है। माँ से ही उसे स्नेह मिलता है, भोजन मिलता है। माँ को न देखने पर वह रोता है और माँ के उसे उठाने पर वह चुप हो जाता। इससे सिद्ध है कि उसका योग अपनी माता के साथ है। बालक थोड़ा बड़ा होने पर खेलकूद में रस लेने लगता है तब उसका योग माँ से परिवर्तित होकर अपने दोस्तों और खेल में जुट जाता है और माँ का बुलावा भी वह टालने की कोशिश करता है। विद्यार्थी जीवन में बच्चे का योग अपनी पढ़ाई, पाठशाला और शिक्षक से हो जाता है। व्यावहारिक जीवन में आने के

बाद उसका योग – धन, सम्पत्ति, मर्तबा, इज़्ज़त, अन्य सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के साथ हो जाता है। विवाह होने पर कुछ समय के लिए उसका योग पत्नी के साथ हो जाता है। सन्तान होने पर पत्नी से भी योग हटकर सन्तान से हो जाता है। बीमारी के दिनों में पूरा ही योग डॉक्टर के साथ होता है क्योंकि उससे ही इलाज होना है। इस प्रकार योग परिवर्तनशील है तो फिर देहधारियों से योग हटाकर परमात्मा से योग लगाना कठिन क्यों होना चाहिए? जहाँ परिचय, सम्बन्ध, स्नेह और प्राप्ति है वहँ योग लगाना बड़ा ही सहज है। अब ये चारों ही आधार परमात्मा से जोड़े जाएँ तो राजयोग कोई कठिन विधि नहीं है।

सबसे पहले राजयोग के लिए स्वयं का और परमात्मा का परिचय होना आवश्यक है। मैं कौन हूँ और मुझे किसके साथ योग लगाना है? अगर हम अपने-आपको देह समझेंगे तो हम परमात्मा के साथ कभी भी योगयुक्त नहीं हो सकेंगे। देह समझने से यही संकल्प आयेंगे – ''मैं पिता हूँ'' तो बच्चे याद आयेंगे, ''मैं शिक्षक हूँ'' तो विद्यार्थी याद आयेंगे ''मैं व्यापारी हूँ'' तो ग्राहक याद आयेंगे। लेकिन जब स्वयं को आत्मा निश्चय करेंगे तब परमात्मा ही याद आयेगा। इस प्रकार राजयोग की पहली सीढ़ी है – आत्मा और परमात्मा के पूर्ण परिचय के आधार पर दोनों मे निश्चय। दोनों का परिचय तो दूसरे और तीसरे प्रवचन में मिल चुका है।

अब परमात्मा के साथ आत्मा का किस प्रकार का सम्बन्ध हो और उसको याद करने की विधि क्या है – इस पर विचार करेंगे।

तीन प्रकार की लौकिक याद

लौकिक दुनिया में विशेष रूप से तीन याद पाई जाती हैं। एक है स्वार्थ के आधार पर याद। किसी से कोई कार्य करवाना होगा तो पहले

आप उसे याद करेंगे। तो स्वार्थ के आधार पर याद हो गई करने वाली याद। दूसरी है आने वाली याद जो किसी की विशेषताओं या गुणों या किये हुए परोपकार के कारण, उस स्नेही की याद स्वत: आती है। तीसरी है सताने वाली याद जो विशेष सम्बन्ध और स्नेह के आधार पर आती है। यह ऐसी याद है जो भुलाना चाहते हुए भी भूलती नहीं। बेटे की मृत्यु हो जाने पर माँ-बाप जानते हैं कि बेटा लौटकर नहीं आयेगा, लेकिन उसको भूल नहीं सकते क्योंकि उसके साथ गहरा सम्बन्ध है। तो प्राप्ति के आधार पर हम किसी को याद करते हैं, स्नेह के आधार पर किसी की याद आती है और सम्बन्ध के आधार पर किसी की याद सताती है।

परमात्मा की याद सबसे भिन्न

देखा गया है कि मनुष्यात्माओं की यादें तो अन्त में दु:ख ही देती हैं। स्वार्थ के आधार पर आई हुई याद कभी भी मनुष्य को सुख नहीं दे सकेगी। आज कोई हमें कुछ प्राप्ति करा पायेगा तो उसकी याद सुख देगी, कल अगर वह नहीं करा पायेगा या धोखा दे देगा तो उसी की याद दु:ख देगी। आज किसी व्यक्ति के गुण या विशेषताओं के आधार पर उसको याद करेंगे तो वह याद सुख देगी लेकिन कल कोई अवगुण सामने आने पर उसी की याद दु:ख देगी क्योंकि मनुष्यात्माओं में कुछ गुण होंगे तो कुछ अवगुण भी होंगे। सम्बन्ध के आधार पर मोह वश सताने वाली याद भी दु:खी ही बनाती है क्योंकि सर्व की देह विनाशी है तो उसके साथ जो देह के सम्बन्ध हैं वे भी विनाशी ही हैं।

अब परमात्मा की याद किस प्रकार की हो? परमात्मा के साथ स्वार्थ के आधार पर योग होगा या हम अन्दर में कोई इच्छा रखकर उन्हें याद करेंगे और वह इच्छा हमारे ही कर्मों के कारण अगर पूर्ण न हुई तो परमात्मा की याद कभी भी सुख नहीं देगी। राजयोग हमें

सिखाता है कि परमात्मा से कभी भी माँगो नहीं। माँगना श्रेष्ठ संस्कार नहीं है। एक कहावत है – ''बिना मागे मोती मिले, मागत मिले न भीख।'' भिखारी के समान इस कलियुगी दुनिया की छोटी-छोटी कामनायें रख परमात्मा से प्रार्थना करना – यह राजयोग नहीं है। लेकिन राजयोगी परमात्मा की सर्व प्राप्तियों का अधिकारी बन जाता है। कलियुगी दुनिया की अल्पकाल की कामनायें तो हमारे परछाई की तरह हैं जिनके पीछे दौड़ने से वे कदाचित् पूर्ण नहीं हो सकती हैं। परन्तु जैसे रोशनी की तरफ जाने वाले व्यक्ति की परछाई उसके पीछे-पीछे स्वत: आती है वैसे ही परमात्मा से योग लगाने वाला व्यक्ति एक गहरी सन्तुष्टता का अनुभव करता है क्योंकि उसको प्रकृति से भी सुख की ही अनुभूति होती है।

केवल सुख के समय ही परमात्मा को याद करना भी राजयोग नहीं है। राजयोगी तो सदा ही सुख के सागर में लहराता रहता है क्योंकि उसे कभी दु:ख आ नहीं सकता। इस पर कबीर का दोहा प्रसिद्ध है –

दु:ख में सिमरण सब करें, सुख में करे ना कोय।
जो सुख में सिमरण करें, तो दु:ख काहे को होय।।

अन्दर में अगर यह भय हो कि परमात्मा का नाम नहीं लेंगे तो वह श्राप दे देगा....इसलिए थोड़ी-सी स्तुति कर लेनी चाहिए या फिर पाप करने के बाद ईश्वर के डर के कारण उसका नाम जप लेना चाहिए ताकि वह माफ कर दे – यह भी श्रेष्ठ योग नहीं है।

सताने वाली याद का तो यह प्रश्न ही नहीं क्योंकि शिव परमात्मा अमर और अविनाशी हैं। हम उनको अपने से दूर करें ही क्यों जो उनकी याद सताये!

परमात्मा की याद का स्वरूप

राजयोग या शिव परमात्मा की याद स्वार्थ या डर के आधार पर

नहीं अपितु सम्बन्ध और स्नेह के आधार पर है जिसको समाने वाली याद कह सकते हैं। आत्मा शिव बाबा की याद में खो जाएं या उसके गुणों में ऐसे लवलीन हो जाएं जैसे बूंदें सागर में समा जाती हैं। लेकिन उसके लिए समानता की आवश्यकता है। जिस प्रकार बिजली की तारों को जोड़ने के लिए रबड़ हटाना पड़ता है तब शक्ति प्राप्त होती है। इसी प्रकार जब देह-अभिमान रूपी रबड़ हटाया जाए तब आत्मा, परमात्मा से शक्ति प्राप्त कर सकती है। आत्मा और परमात्मा के बीच सम्बन्ध जोड़ने के लिए कोई स्थूल तार की आवश्यकता नहीं है। केवल श्रेष्ठ संकल्प-शक्ति, जो आध्यात्मिक शक्ति है, के द्वारा ही यह सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। परन्तु यह संकल्प भी समानता के आधार पर हों। अगर हम स्वयं को नीच, पापी, कपटी और दास स्वीकार कर ऊंचे परमात्मा को याद करेंगे या स्वयं को साकार समझकर परमात्मा को निराकार रूप में याद करने की कोशिश करेंगे तो कभी भी योग नहीं लगेगा और न ही परमात्मा से शक्ति प्राप्त हो सकेगी।

तो राजयोग की सही विधि है – शिव परमात्मा के साथ समानता और स्नेह के आधार पर सर्व सम्बन्ध जोड़ना, जिससे आत्मा अधिकारी बनकर परमात्मा से सर्व प्राप्तियों का अनुभव करे।

आत्मा और परमात्मा के बीच समानता

जिस प्रकार आत्मा ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप है उसी प्रकार शिव पिता भी अति सूक्ष्म ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप हैं। आत्मा परमधाम निवासी है तो शिव पिता भी परमधाम निवासी हैं। शिव पिता सर्व गुणों के सागर हैं तो आत्मा उनकी सन्तान सर्व गुणों की स्वरूप है।

तो राजयोग की सही विधि हुई – स्वयं को परमधाम निवासी अति सूक्ष्म दिव्य ज्योतिर्बिन्दु आत्मा निश्चय कर मन-बुद्धि के द्वारा निराकार, दिव्य ज्योतिर्बिन्दु-स्वरूप शिव पिता से पिता-पुत्र का सम्बन्ध

जोड़कर, उनसे सर्व गुणों के अधिकार प्राप्त करने का अनुभव करना।

योग अभ्यास के समय मनन (रूह-रूहान)

परमप्यारे शिवबाबा, आप कितने महान् हैं...ऊंचे से ऊंचे हैं.....आप ज्योति स्वरूप हैं.....सर्वगुणों के सागर हैं.....सर्वशक्तिवान् हैं.....शिवबाबा, आप मेरे सच्चे माता-पिता हैं.....मैं आत्मा आपकी सन्तान भी ज्योति-बिन्दु रूप हूँ.....बाबा, आपने मुझे अपना बच्चा बनाकर, परम प्यार देकर, मेरी जन्म-जन्मान्तर की थकान दूर कर दी है....अतीन्द्रिय सुख एवं आनन्द का प्रकाश और शक्ति उतर-उतरकर चारों ओर फैल रही है....।

शिव बाबा, आप मेरे परम शिक्षक भी हैं.....मीठे बाबा, आपने मुझे ज्ञान का तीसरा नेत्र देकर त्रिनेत्री बना दिया है.....तीनों लोकों का ज्ञान देकर त्रिकालदर्शी त्रिलोकीनाथ बना दिया है....आपने ही मुझे ज्ञान दिया कि सतयुग के आरम्भ में इस भारत भूमि पर श्रीनारायण का राज्य था....सुख, शान्ति, समृद्धि सब कुछ प्राप्त था....यही सच्चा स्वर्ग कहलाता था.....अब आप पुनः स्वर्ग की स्थापना कर मुझे उसका मालिक बना रहे हैं.....आपने यह भी ज्ञान दिया कि अब सच्चा-सच्चा पुरुषोत्तम संगमयुग चल रहा है जिसमें आप मुझे पुरुषोत्तम देवता बनने के लिए ब्रह्मा बाबा द्वारा ज्ञान और योग की शिक्षा दे रहे हैं.....।

बाबा, आप मेरे सच्चे सतगुरु भी हैं....आपने ही मुझे मुक्ति-जीवनमुक्ति का रास्ता दिखाया है...आप मुझे सच्चा मार्ग-दर्शन करा रहे हैं....ओ जीवन के सहारे बाबा, आपने तो मुझे जीवन दान दे दिया है...। बाबा, आपके कर्तव्यों की मैं कैसे सराहना करूँ....आप ही मेरे मन के सच्चे मीत हैं....बन्धु और सखा हैं...स्वामी हैं....परम हितैषी हैं....कल्याणकारी हैं.....पतित पावन भी हैं.....। आपकी याद से मैं आत्मा पावन बनती जा रही हूँ....मेरा जीवन धन्य-धन्य हो गया

है....जो पाना था वह मैंने आपसे सब कुछ पा लिया....आपसे सर्व सम्बन्धों का प्यार मिल रहा है.....यह कितना सुन्दर अनुभव है.....कितना हल्कापन है.....।

शिव बाबा, आपने मुझे परमात्म-अभिमानी बना दिया है....अब मैं केवल आपको ही याद करूँगी....। कितने काल से मैं आप से अलग हो गई थी.....अब तो मैं आपका हाथ और साथ कभी नहीं छोडूंगी, मैं आपकी सदा आज्ञाकारी, वफादार बनकर रहूँगी....। आपके साथ की यह घड़ियाँ कितनी अमूल्य हैं....कितनी आनन्दमय हैं.... सारे कल्प में केवल एक ही बार ऐसा सुनहरा अवसर मिलता है....। आपने मुझे जो सच्चे ज्ञान रत्न दिये हैं, उनको सारी दुनिया मे बाटकर आपका नाम बाला करूँगी....।

प्रवचन – ५

राजयोग द्वारा विकारों पर विजय

आज के युग को कलियुग कहा जाता है क्योंकि प्रत्येक मनुष्यात्मा में काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार रूपी विकार व्याप्त हैं। इन्हीं विकारों के फलस्वरूप ही मनुष्य दु:ख और अशान्ति का अनुभव कर रहा है। मानव ही अपने कर्मों से गिरकर जब विकारों के वशीभूत हो विकर्म करने लग पड़ता है, तब दानव कहलाता है और जब वह राजयोग द्वारा अपने कर्मों को श्रेष्ठ कर पावन बनता है, तब देवता कहलाता है। शिव बाबा आत्माओं को कहते हैं – ''हे बच्चे! तुम ही पावन देवता थे।'' परमात्मा ने जब मनुष्य को रचा तो अपने जैसा सर्व गुणों से सम्पन्न स्वरूप में रचा जिनको हम ''देवता'' कहते हैं। परमात्मा के रचे हुए सभी पावन देवता कहाँ चले गये? शिव बाबा कहते हैं कि सभी पावन देवता अपने श्रेष्ठ कर्मों की कमाई भोग कर अब कलियुग में विकारी सम्बन्ध में आने के कारण विकर्म यानी पाप कर्मों का बोझा ढोते हए चल रहे हैं। वे विकार कैसे उत्पन्न हुए? अगर गहराई से सोचा जाए तो सब विकारों की जड़ है – **देह-अभिमान।**

सभी विकारों की जड़ है –देह-अभिमान

मनुष्य देह के आधार पर पुरुष-पन या स्त्री-पन के भान में आकर ही काम विकार के वशीभूत होता है। इसी के फलस्वरूप वह अपने ओज और तेज को खोकर शक्तिहीन बनने के कारण अनेक प्रकार के शारीरिक रोगों का शिकार होने लगता है। फिर ''काम'' विकार के परिणामस्वरूप वह जो विकारी सन्तान पैदा करता है, उसके दु:ख में दु:खी रहने लगता है और उनमें ममत्व भाव रख सारा दिन उन्हीं के लिए कमाने तथा घर बनाने में लगा रहता है। मोह के वशीभूत होकर अपने विवेक को भी खो बैठता है और क्रोधी स्वभाव का बन जाता

है। देह के आधार पर जिसे वह अपनी स्त्री, पुत्र, पौत्रे आदि मानता है, उनकी इच्छायें पूर्ण करने के लिए वह अधिकाधिक धन पैदा करने का यत्न करता है, इसके कारण वह लोभ के वश हो जाता है। परन्तु फिर भी लोभी नर की तृष्णायें नहीं मिटती हैं। जब वह सन्तति पैदा कर लेता है और घर तथा धन बना लेता है तब ''मैं एक बड़ा सेठ हूँ'', चार बच्चों का बाप हूँ'', एक ऊंचे खानदान का व्यक्ति हूँ'', बड़े-बड़े लोगों में मेरा उठना-बैठना है'' – इस प्रकार का उसे अहंकार हो जाता है।

देह-अभिमान ही सभी दु:खों का कारण है। अत: जीवन को सुखी-शान्तिमय बनाने के लिए घर-गृहस्थ छोड़ने की आवश्यकता नहीं है बल्कि देह-अभिमान छोड़ने की आवश्यकता है। इसके लिए आत्म-निष्ठ या योग-युक्त होना ज़रूरी है।

(१) काम-विकार

काम विकार आत्मा का सबसे बड़ा दुश्मन है।

''कामी पुरुष संसार में, काम कटारी चलाए,
आदि-मध्य-अन्त हो दु:खी, नर्कवासी बन जाए।''

इस काम विकार ने मनुष्य को नरकवासी बना दिया है। इसी विकार के कारण ही कई राजाओं की राजाई चली गई और देवता भी अपना देवत्व खोकर मनुष्य बन गये। इस विकार को जीतने से मनुष्य फिर से देवता बन सकता है।

काम-विकार को जीतने की युक्तिया

(अ) भाई-भाई की दृष्टि

काम विकार को जीतने के लिए आत्मा को अपना अनादि और आदि स्वरूप याद रखना चाहिए। जब आत्मा यह जान लेती है कि ''मैं तो एक

ज्योति स्वरूप बिन्दु रूप आत्मा हूँ, यह शरीर तो मुझसे भिन्न ५ तत्वों से बना मेरा वस्त्र है, मैं तो परम पवित्र परमात्मा की सन्तान हूँ और उसकी सन्तान होने के कारण सभी नर और नारी रूपी तन में कर्म करने वाली आत्मायें मेरे भाई ही हैं'' तब उसकी दृष्टि और वृत्ति बदल जाती है। आप जानते हैं कि जब तक किसी पुरुष और स्त्री में भाई-भाई या भाई-बहन की दृष्टि रहती है तब तक काम-वासना जागृत नहीं होती। अत: अपने असली अनादि स्वरूप का ज्ञान और स्मृति रहने से दृष्टि आत्मिक रहेगी और राजयोगी काम विकार को जीतने के महान् पुरुषार्थ को बिना हठ क्रिया के करने में सफल हो जाता है।

(ब) आत्मा का सच्चा धर्म पवित्रता है

आपको अनुभव होगा कि जब कोई मनुष्य अपनी धर्म-पत्नी के साथ किसी मन्दिर में जाकर अपने इष्ट के सम्मुख ''त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव'' या ''तुम मात-पिता हम बालक तेरे'' आदि के छन्द गाता है या किसी देवी की प्रतिमा के आगे ''हे अम्बे माँ!'' आदि शब्दों से उसे सम्बोधित करता है, तब उसकी दृष्टि और वृत्ति शुद्ध रहती है। मन्दिर में वह काम-वासना से मुक्त रहता है। स्त्री-पुरुष – दोनों की ओर से परमात्मा को माता-पिता कहने का अर्थ यही तो निकलता है कि दोनों उसकी सन्तान होने के नाते आत्मिक रूप से ''भाई-भाई'' हैं। जब वे इस आत्मिक नाते को और परमपिता परमात्मा के साथ के सम्बन्ध को भुला देते हैं, तब उनको काम रूपी शत्रु का बाण लगता है। आत्मा अपने असली स्वरूप को स्मृति में लाकर बहुत ऊंची स्थिति का अनुभव कर सकती है। यह चिन्तन सदा ही रहना चाहिए कि – ''मैं तो असल में शुद्ध आत्मा हूँ, परमधाम रूपी पावन धाम का मैं मालिक हूँ। परम पवित्र शिव पिता की मैं सन्तान हूँ। पवित्रता मेरा सच्चा धर्म है। अब मैं अपने धर्म को छोड़कर अपवित्रता

को अपने मन में स्थान नहीं दूँगी। आदि स्वरूप में भी मैं श्रीलक्ष्मी, श्रीनारायण अथवा श्रीसीता, श्रीराम इत्यादि देवी-देवताओं का वंशज हूँ, इसलिए उनके समान मुझे भी पवित्र रहना है।''

(२) क्रोध विकार

क्रोध भी एक बड़ा विकार है। कहावत है कि जिस घर में क्रोध होता है उस घर में पानी के घड़े सूख जाते हैं। परन्तु वास्तव में पानी तो क्या क्रोधी मनुष्य का खून भी सूख जाता है। जब मनुष्य को क्रोध आता है वह परिणाम को नहीं सोच सकता है। इसी क्रोध के साथ घर जलकर राख हो जाते हैं और डेरे वीरान हो जाते हैं।

क्रोध के कई रूप और उसके आने के कारण

क्रोध अनेक रूपों में समाया है – उद्वेग, ईर्ष्या, द्वेष, बदले की भावना, रुष्ट होना, हिंसा, वैर-विरोध की भावना इत्यादि। ये सभी रूप मनुष्य को अशान्त करने वाले ही हैं। क्रोध आने के कई कारण हैं। कोई कामना पूरी न होने से क्रोध आता है। इच्छा के विरुद्ध किसी ने कोई कार्य कर दिया तो गुस्सा आता है। अपने ज्ञान के खिलाफ बात हो जाए तो भी क्रोध आता है। कभी-कभी मान, इज़्ज़त न मिलने पर क्रोध आता है। कभी सोचते बहुत हैं परन्तु इतना हो नहीं पाता है, तो भी गुस्सा आता है। कई तो अपनी कमज़ोरियों को छिपाने के लिए डर के कारण भी क्रोध करते हैं। जिम्मेवार व्यक्ति को अधिक क्रोध आता है क्योंकि वह सोचता है कि अगर रोब नहीं रखेंगे तो कर्मचारी काम ठीक नहीं करेंगे या गुस्सा नहीं करेंगे तो बच्चे बिगड़ जायेंगे। आज क्रोध के विकराल रूप के कारण ही अणु बम बने हैं।

क्रोध को जीतने की युक्तिया

(अ) योगियों का जीवन सबसे भिन्न

सबसे पहली बात तो यह निश्चय हो कि हम राजयोगी हैं। योगियों

का जीवन और तरीका दुनिया वालों से अलग होता है। योगियों के विचार दुनियावी विचार नहीं हैं। गुस्से से कोई कार्य करवाने से जो काम होगा; उनसे १० गुणा ज्यादा काम प्रेम से हो सकता है। गुस्से की जगह मित्रता से काम लो तो ज्यादा अच्छा होगा। डर से काम करने वाला भी बहुत नुकसान कर सकता है।

(ब) हर आत्मा का अपना-अपना पार्ट है

अगर किसी के विचारों के अनमोल के कारण क्रोध आता है तो उस समय सोचना चाहिए कि यह संसार तो विभिन्नता का नाटक है जिसमें हरेक आत्मा का अपना-अपना पार्ट है तथा अपनी-अपनी बुद्धि और कर्म हैं, तो फिर सब एक समान सोच भी कैसे सकते हैं? इस संकल्प के आने से क्रोध कभी नहीं आयेगा, बल्कि दूसरे की राय को भी हम महत्व देंगे। यह भी संकल्प कर सकते हैं कि यह कोई कर्मों का हिसाब-किताब है जो चुकता हो रहा है।

(स) रहम की भावना

कभी किसी की कमजोरी देखकर सहन नहीं होता तो भी उस समय क्रोध के बजाए उस पर रहम आना चाहिए। राजयोग तो यह कहता है कि भूल करने वाले पर क्रोध न करो बल्कि उसकी सहायता करो। उसकी भूल निकालो, न कि स्वयं क्रोध कर भूल करो। जब हमें दूसरों का क्रोध करना अच्छा नहीं लगता है तो हमें अपना क्रोध भी निकालना चाहिए, वरना हम स्वयं भी अपराधी ठहराये जायेंगे।

(द) सुख देंगे तो सुख मिलेगा

यह निश्चय रहे कि दूसरों को दु:खी करने वाला तो स्वयं भी दु:खी होता है। शान्त रहने वाला स्वयं को भी शान्ति देता है। इसलिए शान्तिपूर्वक कार्य करने में ही कल्याण है। जैसे गर्म लोहे को ठण्डा लोहा ही काटता है, उसी प्रकार गर्म मनुष्य से ठण्डे होकर बात करने

में ही सफलता है। प्रेमपूर्वक कार्य करने से कोई विघ्न नहीं आयेंगे।

(क) स्व-परिवर्तन से अन्य का परिवर्तन

जब आप क्रोध नहीं करेंगे तब क्रोधी को अपनी भूल महसूस होगी और वह स्वयं माफी मांगने आपके पास आयेगा। दूसरे का क्रोध छुड़ाना यानी पहले अपना क्रोध छोड़ना। अपने मन में कभी भी किसी के प्रति यह धारणा नहीं बनानी चाहिए कि अमुक व्यक्ति कभी बदल ही नहीं सकता है। वह अवश्य बदल सकता है, ऐसी शुभ भावना रखते हुए स्वयं का और सर्व का परिवर्तन करने में ही कल्याण है।

(३) लोभ विकार

लोभ एक ऐसा विकार है जो मनुष्य को बड़ा मीठा लगता है। अत: जैसे चीटिंयां चीनी की चाश्नी से आकर्षित होकर उसमें फंस जाती हैं, वैसे ही जिस मनुष्य को लोभ का चस्का लग जाता है, वह भी उसी के स्वाद में जीवन खो देता है। आज इस लोभ विकार के कारण ही तो मिलावट करना, रिश्वत लेना, काला बाजारी करना, गरीबों का खून चूसना, किसी को मार डालना – इसी प्रकार के पाप कर्म हो रहे हैं।

लोभी मनुष्य सदा अतृप्त और असन्तुष्ट रहता है। जिसकी प्यास बुझती नहीं, उसे जीवन में सुखी कैसे कहेंगे ? वह सदा ही निन्यानवे के चक्कर में रहता है, क्योंकि उसकी सदा ही मांगें बनी रहती हैं। लोभी मनुष्य को ईर्ष्या भी बहुत होती है। वह दूसरे के धन को अपने धन से अधिक होता देख सहन नहीं कर सकता है। ऐसी ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि में जलता हुआ मनुष्य सच्चा सुख कैसे प्राप्त कर सकता है ? लोभ केवल धन का नहीं, परन्तु हर प्रकार के सुख-सुविधा के साधन का भी हो सकता है। अगर किसी को यह साधन उपलब्ध हो भी जाएं परन्तु मन की शान्ति और सन्तोष रूपी धन न हो तो भी वह सुखी

कहाँ ठहरा ? इसलिए कहावत है –

''लोभी नर कंगाल है, दु:ख पावत दु:ख देवत।
निर्लोभी सदा सुखी, ईश्वर हरदम देत।।''

लोभ छोड़ने का अर्थ

लोभ छोड़ने का यह भाव नहीं है कि धन नहीं कमाना चाहिए। परन्तु आज का मनुष्य पेट के लिए नहीं बल्कि पेटियों में जमा करने के लिए कमाता है और उसके लिए जितने अनीति के तरीके हैं, वे सब अपनाता जाता है। अत: मनुष्य को सदा नेक तरीके से उचित ही कमाई करनी चाहिए। इससे मनुष्य को बहुत आत्मिक बल मिलता है और परमात्मा से उसकी प्रीत बढ़ती है।

प्राय: मनुष्य यह सोचता है कि अभी तो खूब धन कमा लूँ, बुढ़ापे में ईश्वर को याद करूँगा। सबसे पहले, क्या यह भरोसा भी है कि वह बुढ़ापे तक जियेगा ? फिर बुढ़ापे में क्या मनुष्य लालच छोड़ देता है ? जीवन-भर लालच करते-करते तो बुढ़ापे में लोभ का संस्कार और अधिक पक्का हो जाता है। इसलिए कहावत मशहूर है कि ''आप भये बूढ़े, तृष्णा भई जवान।'' अत: यह तो अभी छोड़ने से ही छूटेगा। उसकी पालना करने से तो बड़ा ही होगा।

लोभ छोड़ने की विधिया

(अ) सृष्टि की वानप्रस्थ अवस्था आ चुकी है

सदा यह सोचना चाहिए कि अब सृष्टि की वानप्रस्थ अवस्था आ चुकी है। जबकि कलियुग का अन्तिम चरण चल रहा है तो इस दृष्टि में सभी वृद्ध अवस्था में ही हैं। इसलिए अब सबको परमपिता शिव परमात्मा की स्मृति में रहने का अभ्यास करना चाहिए। धन तो केवल एक साधन मात्र है – यह जीवन की सिद्धि नहीं है। अत: इसी के बारे

में सोचते रहना और जीवन का सारा मूल्यवान समय इसके पीछे लगाना बुद्धिमत्ता नहीं है।

(ब) यह धन साथ नहीं चलेगा

यह धन साथ भी तो नहीं चलने वाला है। सिकन्दर राजा का मिसाल आज सबने सुना होगा। वह सारे विश्व का राजा बनने के ख्वाब देख रहा था लेकिन जब उसके मरने की घड़ी आई तब उसने अपने सिपाहियों को कहा कि मेरे हाथ कफ़न से बाहर निकालना ताकि मनुष्य को शिक्षा मिल जाए कि वह कुछ भी इस संसार से नहीं ले जा रहा है, वह खाली हाथ आया था और खाली हाथ ही जा रहा है।

(स) ज्ञान धन ही आत्मा का सच्चा अविनाशी धन है

वास्तव में आत्मा के अन्दर भर रहे ज्ञान रत्न ही आत्मा के साथ जायेंगे। इस एक-एक ज्ञान रत्न की कीमत अनगिनत धनराशि के बराबर है। इसी के फलस्वरूप शिवबाबा हमको सतयुग में इतना धन देते हैं जो वहाँ किसी भी प्रकार की इच्छा करने का कभी संकल्प ही नहीं आ सकता है। जहाँ साक्षात् धन की देवी विराजमान होगी वहाँ धन की क्या कमी हो सकती है? सतयुग के देवताओं ने इस समय संगमयुग पर अपने जीवन को दिव्य और पवित्र बनाकर ही तो वह पद पाया था। तो अब ज्ञान के संचय और योग की कमाई में लग जाना चाहिए क्योंकि यही आत्मा के साथ चलना है।

(४) मोह विकार

मोह भी एक बहुत बड़ा विकार है। परमात्मा शिव धर्मग्लानि के समय अवतरित होकर मनुष्यात्माओं को जो गीता का ज्ञान देते हैं, उसका उद्देश्य ही आत्माओं को नष्टोमोहा तथा स्मृतिर्लब्धा बनाना होता है। क्योंकि मोह भी बहुत दु:ख देने वाला विकार है। मोह की रस्सियाँ बड़ी सूक्ष्म हैं जो दिखाई नहीं देती हैं। परन्तु ये स्थूल रस्सियों और

जंजीरों से भी अधिक कड़ी हैं और जन्म-जन्मान्तर तक नहीं टूटती हैं। स्थूल रस्सियाँ तो मनुष्य को बाहर से बाँधती हैं परन्तु मोह की रस्सियाँ तो आत्मा को बाधती हैं। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि फिर भी मनुष्य इन रस्सियों से छूटने की कोशिश नहीं करता है।

मोह वाला मनुष्य न तो सत्य-असत्य का निर्णय कर पाता है और न ही मृत्यु पर विजय पा सकता है, बल्कि मृत्यु से पहले भी वह कई बार मोह वश मरता है। अत: मोह भले ही दिखाई देने में छोटा विकार है परन्तु वास्तव में वह सबसे खोटा है।

''मोह के बन्धन कड़े, मोह में सब का श्वास।
एक ईश्वर से मोह करो, तो छूटे दु:ख की फांस।''

मनुष्य में मोह तब उत्पन्न होता है जब वह समझता है कि अमुक चीज़ उसकी अपनी है। दूसरे की वस्तु में मोह नहीं होगा। दूसरे की वस्तु खो जाने पर उसे दु:ख नहीं होगा, लेकिन अपनी वस्तु खो जाने पर उसे बड़ा दु:ख होगा।

मनुष्य जब समझता है कि अमुक व्यक्ति मेरा सहारा है या अमुक व्यक्ति से मेरा कार्य सिद्ध हो सकता है तभी उससे ममता का नाता जोड़ लेता है। अपनी रची हुई रचना में भी बड़ा मोह हो जाता है।

मोह को छोड़ने की युक्तिया

सदा यह बुद्धि में रखो कि – मेरा तो एक शिव बाबा दूसरा न कोई। कोई भी सांसारिक व्यक्ति या पदार्थ अपना नहीं है। मनुष्यों की अपनी देह भी उससे छूट जाने वाली है तो बाकी रहना ही क्या है, जिससे वह मोह-ममता रखे ? जबकि इस संसार में सब चीज़ें अस्थिर, परिवर्तनशील और विनाशी हैं तब फिर उसमें मोह रखना यानी स्वयं को दु:खी करने की युक्ति रचना है। अब तो वैसे भी सब छूटना है, तो क्यों नहीं पहले से सब तरफ से बुद्धि निकाल शिव बाबा में

लगाएं, क्योंकि वह ही सबका सहारा है और वह ही सर्व आत्माओं को मुक्ति देने वाला सच्चा-सच्चा सतगुरु है।

(५) अहंकार विकार

स्वयं को देह समझने से ही भौतिक बातों का अहंकार आता है। अहंकारी मनुष्य एक खजूर के पेड़ की तरह है। जिस प्रकार खजूर का पेड़ सुन्दर दिखाई देते हुए भी वह किसी काम का नहीं है क्योंकि वह न यात्रियों को छाया दे सकता है और न उसके फलों तक कोई पहुँच सकता है। इसी प्रकार अहंकारी मनुष्य के गुण होते हुए भी उनसे वह किसी को सुख नहीं दे सकता है और किसी को सुख न देने के कारण स्वयं भी अहंकार के नीचे छिप जाता है। लोगों की दृष्टि में उसका अहंकार ही खटकता है। अहंकारी मनुष्य में न ज्ञान टिक सकता है, न ही उसमें दूसरे सद्गुणों की धारणा हो सकती है, न ही वह दूसरे के मन में प्रेम तथा सम्मान का स्थान प्राप्त कर सकता है।

अहंकार को मिटाने की युक्तियां

इस संसार की प्रत्येक वस्तु अस्थिर है और किसी के हाथ नहीं आनी हैं, तो फिर अहंकार किस बात का ? धन का अहंकार मिटाने के लिए याद रखना चाहिए कि –

किसी की दबी रही धूल में, किसी की राजा खाए,
किसी की चोर लूट जाए, किसी की आग जलाए।।

भस्म होने वाली वस्तु का अभिमान तो निरी अज्ञानता है। आत्म-अभिमानी होकर अगर यह निश्चय किया जाए कि मैं ज्योतिर्बिन्दु आत्मा हूँ, सभी आत्मायें आपस में भाई-भाई हैं, सभी आत्माओं का धाम भी एक परमधाम है, यहाँ कर्मक्षेत्र पर केवल कर्म करने आये हैं, तो उस क्षणिक देह, कुल जाति और देश का अहंकार मिट जायेगा।

स्वयं को विश्व सेवाधारी निश्चय करने से भी अहंकार नहीं आयेगा। सेवाधारी तो सदा सेवा में लगा रहता है, उसमें अहंकार किस बात का ? उसे तो बहुत ही मधुरता और नम्रता से व्यवहार करना चाहिए। जो गुणवान होगा वह आम के पेड़ की तरह झुकेगा। परन्तु उसका झुकना, झुकना नहीं है वह तो झुककर सबको झुकाने के निमित्त बन जाता है। आज इसी अहंकार के कारण ही तो सारा संसार नर्क बन चुका है। अगर सभी का अशुद्ध अहंकार मिट जाए तो इस सृष्टि को स्वर्ग बनाना कोई बड़ी बात नहीं है। सार यही है –

नर अहंकार जो देह का, नर्क में ले जाए।
पर अहंकार शुद्ध आत्मा का, स्वर्गधाम पहुँचाए।
विकारी मन को सुख कहाँ, ज्ञान बिन टले न विकार।
देह अहंकार जो मिट चले, रहें न बाकी चार।।

राजयोगी शिव पिता के साथ सर्व सम्बन्ध जोड़कर विकारों पर विजय पाने की शक्ति पा लेता है। इन विकारों पर जीत पाने से ही मनुष्य जगतजीत, सारे विश्व का मालिक, देवता बन सकता है।

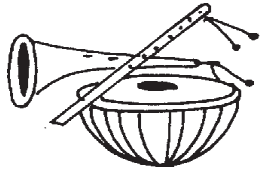

प्रवचन – ६

राजयोग द्वारा अष्ट शक्तियों की प्राप्ति तथा दिव्य गुणों की धारणा

बहुत-से लोग योग को एक-आध घण्टे की कोई क्रिया समझते हैं परन्तु वास्तव में योग तो जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण का अथवा एक श्रेष्ठ जीवन-पद्धति का नाम है। राजयोगी का जीवन, उसका आचार-व्यवहार, उसकी रीति-नीति ही भोगी से अलग और अलौकिक होती है। निस्सन्देह, राजयोग एक अभ्यास, पुरुषार्थ या क्रिया-विशेष का भी नाम है, परन्तु यह एक ऐसी महान् साधना या जीवन को दिव्य बनाने की कला है जिसके द्वारा मनुष्य स्वयं ही महान् बन जाता है और सारे विश्व को भी महान् बना देता है।

राजयोगी घर-गृहस्थी का त्याग कर जंगलों के अन्दर कुटियाओं और गुफाओं में जाकर योग नहीं लगाता है, परन्तु वह समाज में रहकर पारिवारिक, सामाजिक और व्यावहारिक समस्याओं को बड़े ही सुचारू रूप से पार करता हुआ कमल फूल समान न्यारा और प्यारा जीवन व्यतीत करता है। उसकी स्थिति हर परिस्थिति में एकरस रहती है। जिस प्रकार बैटरी का सम्बन्ध बिजलीघर के साथ होने से बैटरी में फिर से शक्ति भर जाती है, उसी प्रकार सर्वशक्तिवान परमात्मा शिव जो सर्वशक्तियों का स्रोत है, उससे सम्बन्ध जोड़ने से आत्मा में कई शक्तियों की प्राप्ति होती है, जो हर एक के जीवन में अति आवश्यक हैं। इन्हीं शक्तियों की कमी के कारण घर-घर में कलह-क्लेश बढ़ रहा है, जिसके फलस्वरूप, मानसिक तनाव बढ़ता जा रहा है और नई-नई बीमारियाँ भी उत्पन्न होती जा रही हैं। परन्तु राजयोग इन सब बातों को जड़ से समाप्त कर देता है।

१. **सहन-शक्ति** – जब हम यह निश्चय करते हैं कि हम शान्त स्वरूप आत्मा हैं, शान्ति के सागर परमपिता परमात्मा शिव की सन्तान

हैं और शान्तिधाम के निवासी हैं तो हमारे द्वारा ऐसा कोई कर्म नहीं होगा जिससे अशान्ति फैले। इस निश्चय से सबसे पहले हमारे अन्दर सहन करने की शक्ति आती है। कोई व्यक्ति अगर गालियाँ देता रहे तो भी मैं अपनी शान्ति का गुण क्यों नष्ट करूँ? एक बच्चा किसी आम के पेड़ को पत्थर मारता है लेकिन वह पेड़ उसके जवाब में बच्चे को फल देता है। एक जड़ वस्तु में इतना गुण है तो चैतन्य में तो इससे भी ज्यादा होना चाहिए। लेकिन आज का मनुष्य ईंट का जवाब पत्थर से देता है। राजयोगी इस सन्दर्भ रूप में सहनशील रहेगा क्योंकि वह जानता है कि दूसरा व्यक्ति अज्ञानता के कारण इस प्रकार का व्यवहार कर रहा है, परन्तु वह स्वयं तो ज्ञानवान है। अगर वह भी अज्ञानी के सदृश्य कर्म करे तो अज्ञानी और ज्ञानी में अन्तर ही क्या रहा? वह स्वयं शान्तस्वरूप बन शान्ति का दान देगा। वैसे भी क्रोधी मनुष्य की बुद्धि में उस समय तो कोई बात बिठाई नहीं जा सकती है। तो राजयोगी सहनशक्ति को धारण कर उसकी बात मन में स्वीकार ही नहीं करता जो जवाब में कुछ कहना पड़े। वैसे भी एक पत्थर हथौड़ी और छेनी की ठोकरें सहन करने के बाद ही तो पूज्यनीय मूर्ति बनता है। महान् आत्माओं ने अपनी महानता सहनशक्ति के आधार पर ही तो प्राप्त की है, तो मैं शिवबाबा की सन्तान ने अगर सहन कर भी लिया तो कौनसी बड़ी बात हुई? कोई भी व्यक्ति ९ बार सहन करके १०वीं बार सहन नहीं कर सके तो भी उसे सहनशील नहीं कहेंगे। इसलिए मुझे सहन करते ही जाना है।

२. **समाने की शक्ति** – राजयोग द्वारा दूसरी शक्ति आती है – समाने की शक्ति। जैसे सागर अपने अन्दर सब कुछ समा लेता है, वैसे ही राजयोगी का हृदय सागर के समान विशाल, गहन और स्थिर होने के कारण वह मान-अपमान, स्तुति-निंदा, सुख-दु:ख, हार-जीत आदि बातों में समान रहकर सब कुछ अपने अन्दर समा लेता है। राजयोगी में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना रहती है, क्योंकि वह

समझता है कि सब परमात्मा के बच्चे मेरे भाई ही तो हैं। एक माँ अपने बच्चों की भूलें समा लेती हैं ना। परमात्मा भी हम सब आत्माओं के परमपिता होने के कारण बुराइयाँ जानते हुए भी अन्दर समा लेते हैं।

अगर किसी की भूल बताना आवश्यक भी होगा तो राजयोगी ईर्ष्या-द्वेष में आकर उसके समक्ष अथवा अन्य के आगे उसका वर्णन नहीं करेगा, परन्तु शुभ-चिंतक बन समय और परिस्थिति को देखकर श्रेष्ठ भावना से समझायेगा। अगर भूल करने वाला व्यक्ति नहीं समझता तो वह स्वयं की स्थिति नहीं बिगाड़ेगा लेकिन भूल करने वाले का भाग्य समझकर समा देगा। वह आत्माओं के अवगुणों को न देख कर केवल उनसे गुण ही धारण कर सदा हर्षित रहेगा।

३. **परख शक्ति-** राजयोग द्वारा परख शक्ति भी सुचारू रूप से आती है। जैसे एक जौहरी कसौटी के आधार से असली व नकली आभूषणों को परख लेता है, वैसे ही राजयोगी भी ज्ञान की कसोटी के आधार से सच्चे व झूठे व्यक्ति और परिस्थिति को परख सकता है। शिवबाबा की याद से साक्षीपन की स्थिति बन जाती है जो हर व्यक्ति, वस्तु व परिस्थिति को स्पष्ट परखने में मदद करती है अथवा परख शक्ति सहज ही धारण करा देती है।

४. **निर्णय शक्ति** – राजयोगी के मन-बुद्धि की तार परमात्मा के साथ जुटी होने के कारण वह तराजू की तरह उचित और अनुचित बात का शीघ्र ही निर्णय ले सकता है। उसको शिवबाबा से कई प्रकार की प्रेरणायें भी प्रापत होती हैं, बुद्धिमानों में बुद्धिमान शिवबाबा से बुद्धियोग लगाने से योग्य समय पर निर्णय लेना सहज आ जाता है अथवा निर्णय शक्ति का विकास होता है।

५. **सामना करने की शक्ति** – राजयोगी मनुष्य का सामना नहीं करता है लेकिन परिस्थितियों का सामना बड़ी सहज रीति से कर लेता है। सबके दु:खदायक परिस्थिति जो किसी के जीवन में आती हैं वह है अपने नजदीक के सम्बन्धी की मृत्यु। राजयोगी इस घटना का बगैर

किसी दु:ख और वेदना के सामना करता है क्योंकि वह जानता है कि आत्मा तो कभी भी मरती नहीं है, आत्मा एक अभिनेता की तरह इस सृष्टि रूपी रंगमंच पर आती है, शरीर तो केवल एक वस्त्र के समान है। किसी की मृत्यु पर राजयोगी यही सोचता है कि वह आत्मा एक शरीर रूपी वस्त्र को छोड़ अपने कर्मों के अनुसार अन्य देह रूपी वस्त्र धारण करने के लिए गई है – दूसरा अभिनय करने। राजयोगी के सामने अगर सांसारिक समस्यायें तूफान का रूप धारण कर जाएं तो भी वह कभी विचलित नहीं होता है। उसने अपना साथी परमात्मा को बनाया है। जिसका साथी है भगवान उसको क्या रोकेगा आंधी और तूफान। परमात्मा का सहारा होने के कारण राजयोगी की आत्मा सदा दीपक के समान जगती रहती है तथा अन्य आत्माओं को ज्ञान प्रकाश देती रहती है। अत: शिव बाबा की याद में राजयोगी आत्मा के अविनाशीपन, ड्रामा की ढाल तथा सर्वशक्तिवान् पिता की सन्तान होने के फलस्वरूप अपने शक्ति स्वरूप में स्थित होकर हर परिस्थिति का सामना सहज ही कर सकता है।

६. **सहयोग शक्ति** – आज सहयोग शक्ति की कमी के फलस्वरूप कितनी समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। मनुष्य अपने स्वार्थ के कारण सहयोग नहीं देना चाहता है। आज संसार में तीन प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं – एक हैं दानवी वृत्ति वाले। दानवी वृत्ति वाले सोचेंगे – ''मेरा तो मेरा, पर तेरा भी मेरा''। अर्थात् अपना सहयोग देने के बजाय अन्य की वस्तु पर भी अधिकार रखेंगे। मानवी वृत्ति वाले सोचेंगे – ''मेरा सो मेरा, तेरा सो तेरा''। अर्थात् उनको किसी से मतलब नहीं। उनमें अगर स्वार्थ नहीं तो परोपकार की भावना भी नहीं। परन्तु राजयोगी कहेगा – ''न कुछ मेरा, न कुछ तेरा। यह सब कुछ परमात्मा का है।'' वह केवल अपनी चीज़ों से ही अनासक्त नहीं रहेगा परन्तु अन्य को भी अनासक्त रहने की प्रेरणा देगा। वह अपने तन-मन-धन को परमात्मा की अमानत समझकर ट्रस्टी होकर चलेगा और उसे

ईश्वरीय कार्य में लगाकर सहयोगी बनता जायेगा। वह स्वयं कार्य करके अन्य को सिखायेगा। इसी प्रकार परमात्मा के कार्य में एक-एक के सहयोग की अंगुली मिलने से इस कलियुगी पहाड़ को उठाकर इसके स्थान पर सतयुग को लाना कोई बड़ी बात नहीं है। बस हिम्मत रखते जाइये और शिवबाबा की मदद लेते जाइये। ''हिम्मते मर्दा तो मददे खुदा।''

७. **विस्तार को संकीर्ण करने की शक्ति** – जैसे कछुआ अपने अंगों को जब चाहे सिकोड़ लेता है और जब चाहे उन्हें फैला लेता है, वैसे ही राजयोगी जब चाहे अपनी इच्छा अनुसार मालिक बन अपनी कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करता है और जब चाहे विदेही एवं शान्त अवस्था में रह सकता है। इस प्रकार की विदेह अवस्था में रहकर वह अनेक बन्धनों से स्वयं को मुक्त अनुभव करता है।

८. **समेटने की शक्ति** – राजयोगी में समेटने की शक्ति भी बहुत सहज आ जाती है क्योंकि वह जानता है कि सृष्टि चक्र का अन्तिम समय होने का कारण उसके वापिस परमधाम घर जाने का समय आ चुका है। जिस प्रकार एक मुसाफ़िर यात्रा पर जाते समय आवश्यक वस्तुएं ही अपने साथ ले जाता है, उसी प्रकार राजयोगी अपनी आत्मा में दिव्य गुण, शक्तियां, श्रेष्ठ कर्म या श्रेष्ठ संस्कारों का ही संग्रह करता है, क्योंकि वे ही आत्मा के सच्चे साथी बनकर उसके साथ जाते हैं। वह और सब तरफ से अपना हिसाब-किताब चुकता करता जाता है और एक ही लगन में रहता है कि उसे वापस परमधाम जाना है।

वह यह अवश्य ही ध्यान रखता होगा कि किस समय किस स्थिति का प्रयोग करना है। सहन शक्ति धारण करने के समय अगर सामना करने की शक्ति का प्रयोग किया तो और समस्या खड़ी हो सकती है। सामना करने के बदले अगर सहन कर लिया तो भी सफलता नहीं मिलेगी। इसलिए सबसे पहले आवश्यक है परख और निर्णय शक्ति।

राजयोगी आदि, मध्य और अन्त सोच-समझकर कदम आगे बढ़ाता है। उसमें सहन-शक्ति होने के कारण धैर्यता का भी गुण होता है। धीरज का फल सदा मीठा होता है। इसलिए राजयोगी हर कर्म में सदा सफलता का अनुभव करता है। वह सदा आत्म-स्थिति में रहने के कारण अन्तर्मुखी बन अपनी अवस्था भी जांच करता रहता है। इसके फलस्वरूप उसका हर संकल्प, बोल और कर्म श्रेष्ठ होता है। उसकी वाणी में मिठास होती है। इसी अढ़ाई इंच की जीभ के लिए कहावत है कि ''चाहे तो वह किसी को तख्त पर बिठाये और चाहे तो किसी को तख्ते पर चढ़ाये।'' तलवार का घाव तो कुछ समय के बाद मिट जायेगा, लेकिन जबान से किसी के हृदय पर किया हुआ घाव अमिट रह जाता है। राजयोगी हंस के समान सभी के गुण रूपी मोती ग्रहण करता है, अत: वह सदा हर्षित भी रहता है और हर परिस्थिति में स्थिर रहता है।

राजयोगी में इन दिव्य गुणों और शक्तियों की धारणा होने के कारण वह समाज के लिए एक प्रेरणादायक अंग बन जाता है। वह अपने स्व-परिवर्तन द्वारा पहले अपने परिवार को शुद्ध और पावन बनाता है, परिवार के बदलने से समाज बदलता है, समाज के बदलने से देश और देश के बदलने से सारा विश्व बदल जाता है। इसी प्रकार राजयोगी स्व-परिवर्तन से सारे विश्व का परिवर्तन करता है।

शक्तिस्वरूप का अनुभव

मैं एक शक्तिस्वरूप आत्मा हूँ....प्रकाश स्वरूप हूँ....। मीठे बाबा! आप सर्वशक्तिवान् हैं....सर्वशक्तियों के दाता हैं....। मैं आपकी सन्तान मास्टर सर्वशक्तिवान् हूँ....। कितना प्रकाश है....! कितनी शक्ति है....! आपकी याद में रहने से मैं आत्मा सर्व शक्तियों को अपने अन्दर भर रही हूँ....। मैं प्रकाशस्वरूप और शक्तिस्वरूप हूँ....मैं आत्मा बीज स्वरूप हूँ, लाइट हाउस हूँ.....माइट हाउस

हूँ....विश्व कल्याणकारी हूँ....। मुझे इस प्रकाश और शक्ति को सारे विश्व में फैलाना है....मैं इस प्रकाश और शक्ति को सारी दुनिया को प्रदान कर रही हूँ....। मैं मायाजीत बनी हूँ....। मैं नये विश्व का मालिक बन रही हूँ...। मैं रूप में ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप हूँ। लेकिन शक्ति में सूर्य समान हूँ...। लाइट हाउस हूँ....। इसी लाइट और माइट से सारे विश्व का कल्याण होगा और यह सृष्टि स्वर्ग बन जायेगी....।

ओमशान्ति।